







३६ (१९)

# चतुर्थस्तुतिनिर्णयः

न्यायांजोनिधि-श्रीमद्-आत्मारामजी

आनंदधित्तयजी महाराज विरचितः ।

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

पद्मपातं परित्यज्य, तटस्थीज्य, सत्वरं॥ बुद्धि  
मद्भिर्विलोक्योयं, चतुर्थस्तुतिनिर्णयः ॥ १ ॥

यह ग्रंथ

राधणपुरके संघतरफसें शैठ मोहन  
टोकरसीकी पहेडीवालेके आज्ञासें

मुंबईमें

निर्णयसागर मुद्रायत्रमें

शाण् चीमसी माणिकने उपवाकर  
प्रकाशित किया.

स १९४४

इस्वी१८८८



## प्रस्तावना.

विदित होके अनादि कालसे प्रचलित हुआ जया ऐसा परमपवित्र जो जैनमत है, परंतु इस दुंमा अ वसर्पिणी कालमें नस्मग्रहादि अनिष्ट निमित्तोंके मिलनेसे अशुच मिथ्यात्व मोहादि निविड कर्मोंके उदयवाले बहोत जीव होते जये, वो बहुलकर्मी जीवोंमेंसे कितनेकने तो अपने कुविकल्पकेही प्र जावसें, और कितनेक तो परजवका जय न रखनेसें मात्र अपने मुखसें जो कोइ वचन निकाला होवे तिसकों कोइ असत्य प्रपंचसेंजी सत्य करके लो कोंके हृदयमें स्थापन करना चाहिये ऐसे हठ कदाग्रहसें, और कितनेकने तो कोइ दूसरेसें इर्ष्या होनेसें उसकों जुठा बना कर अपना नाम बडा करनेके लीये, और कितनेकने तो अपने अरु अपने पक्षवालेके तरफ धर्म माननेवाले बहोत मनु प्योंका समुदाय मिले तो पेट नराइ अही तहेसें चले इसी वास्तें मतचेद करके कोइ नवीन पंथ प्रच लित करना ऐसी बुद्धिसें, इत्यादि औरजी विचित्र प्रकारके हेतुयोसें यह शुद्ध आत्मधर्म प्रकाशक जैन

मतके नामसेंजी प्रस्तुत अनेक प्रकारके पुरुषोंने अनेक तहेके मत उत्पन्न करेथे तिनमेंसें कितनेक तो नष्ट हो गये, अरु कितनेक वर्तमान कालमें विद्यमान हैं, इतनेपरजी संतोष न जयाके अवतो बस करे ?

आगेही बहुत जनोंने जैनमतके नामसें जैन मतकों चालनी समान निन्न निन्न मार्गका प्रचार कर ररका है. इतनाही बहोत हुआ तो फेर अब हम काहेकों नवीन मत निकाले ? ऐसी बुद्धि जि नोमें नही है वे अबजी नवीन पंथ निकालनेमें उ द्यम करते हैं. संप्रतिकालमें तपगञ्जके यति रत्नवि जयजी अरु धनविजयजीने तीन शुष्का पंथ निकाल ररका है यह दोनो यतिने तीन शुई आदिक कितनीक बातों उत्सूत्र प्ररूपणा करके मालवे और जालोरके जिह्नेमें कितनेक जोले श्रावकोंके मनमे स्वकपोलक विपत्तमतरूप चूतका प्रवेश कराय दीया है. ये यती संवत् १९४० की सालमें गुजरात देशका सहेर अ मदावादमें चोमासा करणोंकें आये, जब मुनि श्रीआ त्मारामजीका चोमासानी अहमदावादमें हुआथा.

तिस वखत रत्नविजयजीने एक पत्रमें कितनेक प्रश्न लिखके श्रीमन्नगरशेठजी प्रेमानाऽ योग्य नेजे

वो पत्र नगर श्रेष्ठजीने मुनि श्रीआत्मारामजीके पास  
 भेजा उनोंने वांचा परंतु वो पत्र अञ्हीतरे शुद्ध लखा  
 हुआ नहींथा, इसवास्ते महाराजने पीठा श्रेष्ठजीकों  
 दे दीया और श्रेष्ठजीकों कहाके आप रत्नविजय  
 जीकों कहना के तीन शुद्धके निर्णयवास्ते हमारे  
 साथ सत्ता करो. तत्र श्रीमन्नगरश्रेष्ठ प्रेमान्नाइजीने रत्न  
 विजयजीकों सत्ता करनेके वास्ते कहला भेजा, जब  
 रत्नविजय, धनविजयजी यह दोनो नगरश्रेष्ठके वंदेमें  
 आकर श्रेष्ठजीकों कह गये के हम सत्ता नहीं करेंगे.

कितनेक दिनो पीठे मेवाडदेशमें सादडी, राणक  
 पुर और शिवगंजादि स्थानोसें पत्र आये तिसमें  
 ऐसा लेख आया के अहमदावादमें सत्ता दुइ तिसमें  
 रत्नविजयजी जीत्या और आत्मारामजी हास्या, ऐसी  
 अफवा सुनके नगरश्रेष्ठजीने सर्व संघ एकठा करके ति  
 नकी सम्मतसें एक पत्र ठपवाय कर वहोत गामो के  
 श्रावकोंको भेज दीया तिसकी नकल यहां लिखते है.

“ एतान् श्री अहमदावादी ली० श्रेष्ठ प्रेमान्नाइ  
 हेमान्नाइ तथा श्रेष्ठ हठीसंघ केसरीसंघ तथा श्रेष्ठ जय  
 सिंघनाइ हठीसंघ तथा श्रेष्ठ करमचंद्र प्रेमचंद्र तथा श्रेष्ठ  
 जगुनाइ प्रेमचंद्र वगैरे संघसमस्तना प्रणाम वांचवा:



विशेष लखवा कारण ए ठे जे अत्रे चोमासुं मुनिश्री  
 आत्मारामजी महाराज रहेला ठे तथा मुनि राजें  
 इस्ररि पण रहेला ठे, ते तमो वगैरे घणा देशावर  
 वाला जाणो ठो. मुनि आत्मारामजी महाराज चार  
 थोयो प्रतिक्रमणामां कहे ठे, ते कांइ नवीन नथी  
 परापूर्व चालती आवेली ठे. हालमा सु० राजें इस्ररि,  
 प्रतिक्रमणमां त्रण थोयो कहेवानुं परुष्युं ठे; परंतु  
 अहींआं अमदावादमां आठ दश हजार श्रावकनो  
 संघ कहेवाय ठे, तेमां कोश्यें त्रण थोयो प्रतिक्रम  
 णमां कहेवी एम अंगीकार कस्युं नथी, अने कोइ  
 त्रण थोयो कहेतुं पण नथी, आटली वात लखवानुं  
 हेतु ए ठे जे गाम सादरी तथा शीवगंज तथा रत  
 लाम विगरे देशावरथी श्रावकोना तथा साधुजना  
 कागल आवे ठे; तेमां एम लख्युं ठे जे अमदावाद  
 शहेरमां घणा श्रावकोए तथा साधुजीयोए त्रण थो  
 योनुं मत अंगीकार कस्युं ठे ए विगरे असंजवित जुठा  
 लखाण आव्या करे ठे, ए बधुं खोटुं ठे, तेथी त  
 मोने आ शहेरना संघनी तरफथी साचे साचुं लख  
 वामां आवे ठे के, अहीयां त्रण थोयोनुं मत कोश्यें  
 कबुल कस्युं नथी वली मुनि राजें इस्ररिनै पुढतां तेमनुं

कहेवुं एवुं ठे के, अमे कोइ देशावरे लख्युं नथी, तथा लखायुं पण नथी, एरीतें तेमनुं कहेवुं ठे. वीजुं सना थइने नेमां मुनि श्री आत्मारामजी महाराज हाखा एवुं देशावरथी लखाण अहिंयां आवे ठे; पण ना इजी ए वात वथी खोटी ठे, केमके ? अत्रे सना थइ नथी तो हारवा जीतवानी वात विलकुल खोटी ठे, ते जाणजो. संवत १९४१ ना कार्तिक शुद्ध ६ वार सनेउ तारिख २५ मी माहे अक्टोबर सने १९९४ ली० प्रेमाजाइ हेमाजाइना प्रणाम वांचजो.

इत्यादि वडे वडे तेवीश चौवीश शेठोंकी सही सहित पत्र ठपवाके चेजे, चोमासा वीतत हूया पीठे मुनि श्री आत्मारामजी श्री सिद्धगिरिकी यात्रा करके सरत शहरमें चतुर्मास रहे, तहांसैं पीठे श्रीपा जीताणे चोमासा करा जव वहांसे विहार करके गाम श्रीमांजलमें फाल्गुन चतुर्मास करा, तहां मुनि आत्मारामजी महाराजके पास राधनपुरनगरका मुख्य जानकार थावक गोडीदास मोतीचंडजी आयके कहेने लगा के राधणपुर नगरमें रत्नविजयजी आये है, वो ऐसी प्ररूपणा करते है के प्रतिक्रमणके आदिमें तीन थुइ कहनी परंतु चौथी थुइ नही कहनी.

इसी वास्ते में आपके पास विनंति करनेके वास्ते यहां आयाहूं के आप राजधनपुर नगरमें पधारो, क्योंके ? रत्नविजयजी आपसें तीन शुद्ध वावत चरचा करणों कहते हैं, यह बात सुनकर मुनि श्री आत्मारामजी महाराजनें मांझल गामसें राधनपुर नगरकों विहार करा सो जब श्रीसंखेश्वर पार्थनाथजीके तीर्थमें आये, तहां राधनपुर नगरसें बहुत श्रावक जन आकर महाराज साहेवकों कहने लगे के रत्नविजयजी तो राधनपुर नगरसें थराद गामकी तरफ विहार कर गए हैं. यह बात सुनके श्रावक गोडीदास जीने राधनपुरके नगरशेठ सिरचंदजीके योग्य पत्र लिखके जेजा के तुमने रत्नविजयजीकों मुनि आत्मारामजी महाराजके आवणे तक राखणा, क्योंके ? रत्नविजयजीके मास कल्पसें उपरांत रहनेका नियम नहीं है कितनेक गामोंमें रत्नविजयजी मास कल्पसें अधिकनी रहे हैं यह बात प्रसिद्ध है ऐसा पत्र वांचके शेठ सिरचंदजीने राजधनपुर नगरसें दश कोश दूर तेरवाडा गाममें जहां रत्नविजयजी विहार करके रहेथें, वहां कासीदके मारफत एक पत्र लिखके जेजा; तहांसे रत्नविजयजीने उसपत्रका

उत्तर प्रत्युत्तर असमंजस रीतीसें राधनपुरनगरमें नही आवनेकी सूचना करनेवाला लिखके जेज दीया.

इस लिखनेका प्रयोजन यह है के जब रत्नविजयजीने श्रीअहमदाबादमें सच्चा नही करी तब विद्याशालाके बैठने वाले मगनलालजी तथा ठोटालालजी आदिक अन्यजी कितनेक श्रावकोने प्रार्थना करीथी अरु अब श्रीराधनपुर नगरके श्रेष्ठ शिरचंदजी अरु गोडीदासादि सर्व संघ मिलके मुनि श्री आत्मारामजी महाराजकों प्रार्थना करी के, रत्नविजयजी तीन शुद्ध प्ररूपते हैं, अरु प्रतिक्रमणकी आदिकी चैत्यवंदनमें चार शुद्ध कहनेकी रीत प्राचीन कालसें सर्व श्रीसंघमें चली आती है. तो आप सर्व देशोंके चतुर्विध श्रीसंघके परकृपा करके पडिक्रमणकी आदिमें चार शुद्धों चैत्यवंदनमें जो कहते हैं सो पूर्वाचार्योंके बनाये हुए कौन कौनसें शास्त्रके अनुसारसें कहते हैं, ऐसे बहोत शास्त्रोंकी साक्षि पूर्वक चार शुद्धोंका निर्णय करने वाला एक ग्रंथ बनवायदो, जि सके वाचने पढनसें सज्जानोंके अंत.करणमें अर्हद्वचन उच्चापन करणे वालेने त्रम माल दीया है सो मिट जावेगा. इत्यादि बहोत उपकार होवेगा ऐसी श्रीसं

घकी आग्रह पूर्वक विनंति सुनकर और जानका कारण जानकर महाराज श्रीआत्मारामजीने यह विषयपर ग्रंथ बनानेकी मंजूरीयात दीनी. फेर महाराज साहेब यह रत्नविजयजीको प्रथमकी मंत्रसाधनेकी हकीकतसें तथा पीठेसें श्रीविजयधरणींइसूरिसें खटपट चली इत्यादि, औरजी तिसके पीठे स्वयमेव श्री पूज बन बैठे, तथा उदेपुरके राणेकी फरमाससें पालखी चमरादि ढीन लीनी, तदपीठे स्वयमेव साधुजी बन बैठे इत्यादि कितनीक हकीकत प्रथमसें सुनीथी और कितनीक अबजी श्रावकोंके मुखसें सुनके करुणाके समुद्र, परोपकार बुद्धिकेही परमाणुसें जिनोके शरीरकी रचना हुई है ऐसे महाराज साहेबने प्रथमतो रत्नविजयजी बहुल संसारी न हो जावे इसी वास्ते इनोका उद्धार करना चाहियें. ऐसा उपकार बुद्धिसें हम सब श्रावकोंको कहने लगे के प्रथमतो यह रत्नविजयजीको जैनमतके शास्त्रानुसार साधुमानन्दा यह बात सिद्ध नहीं होती है. क्योंके? रतनविजयजी प्रथम परिग्रहधारी महाव्रतरहित यति थे, यह कथा तो सर्व संघमे प्रसिद्ध है, अरु पीठे निर्ग्रंथ पणा अंगीकार करके पंचमहाव्रत रूप संयम

ग्रहण करा; परंतु किसी संयमी गुरुके पास चारित्रोपसंपत् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी नहीं, अरु पहले तो इनका गुरु प्रमोदविजयजी यती थे, सोतो कुछ संयमी नहीं थे यह बात मारवाडके वहाँत श्रावक अन्धी तरेसें जानते है. तो फेर असंयतीके पास दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा. यह जैनमतके शास्त्रोंसें विरुद्ध है.

इसी वास्ते तो श्रीवज्रस्वामी शाखायां चांडकुजे कौटिकगणे वृहद्गठे तपगठालंकार नट्टारक श्रीजगच्चंडसूरिजी महाराजे अपणों शिथिलाचारी जानके चैत्रवाल गठ्ठीय श्री देवचंडगणि संयमीके समीप चारित्रोपसंपत् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी. इस हेतुसेंतो श्रीजगच्चंडसूरिजी महाराजके परम संवेगी श्रीदेवचंडसूरिजी शिष्ये श्रीधर्मरत्नग्रंथकी टीकाकी प्रशस्तिमें अपने वृहद् गठका नाम ठोडके अपने गुरु श्रीजगच्चंडसूरिजीको चैत्रवाल गठ्ठीय लिखा. सो यह पाठ है. कमशत्रैत्रावालक, गठे कविराजराजिननसीव ॥ श्रीचुवनचंडसूरिर्गुरुद्विधाय प्रवरतेजाः ॥ ४ ॥ तस्य विनेयः प्रगमे, कमंदिरं देवचंडगणिपूज्य ॥ शुचिस मयकनकनिकपो, वचूव नृविदितनृरिगुण ॥ ५ ॥

तत्पादपद्मचृंगा, निस्संगाश्रंगतुंगसंवेगाः ॥ संजनित  
 शुद्धबोधाः, जगति जगच्चंद्रसूरिवराः ॥ ६ ॥ तेषा  
 मुनौ विनेयौ, श्रीमान् देवेंद्रसूरिरित्याद्यः ॥ श्रीविज  
 यचंद्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्त्तिजरः ॥ ७ ॥ स्वान्यथो  
 रूपकाराय, श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा ॥ धर्मरत्नस्य टीकेयं,  
 सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ८ ॥ इत्यादि. इस वास्ते नव  
 नीरु पुरुषांकों अजिमान नही होता है, तिनकूं तो  
 श्रीवीतरागकी आज्ञा आराधनेकी अनिजाषा होती  
 है, तब रत्नविजयजी अरु धनविजयजी यह दोनुं  
 जेकर नवनीरु है, तो इनकोंनी किसी संयमी मुनिके  
 पास फेरके चारित्रोपसंपत् अर्थात् दीक्षा लेनी चाहि  
 यें, क्योंके फेरके दीक्षा लेनेसें एकतो अजिमान दूर  
 होजावेगा, और दूसरा आप साधु नही है तोनी जो  
 कोंकों हम साधु है ऐसा केहना पडता है यह मिथ्या  
 जाषण रूप दूषणसेंनी वच जायगे, अरु तीसरा जो  
 कोइ जोले श्रावक इनकों साधु करके मानता है,  
 उन श्रावकोंके मिथ्यात्वनी दूर हो जावेगा. इत्यादि  
 बहुत गुण उत्पन्न होवेंगे जेकर रत्नविजयजी धनवि  
 जयजी आत्मारथी है तो यह हमारा कहना परमो  
 पकाररूप जानके अवश्यही स्वीकार करेंगे.

यह फेरके दीक्षा उपसंपत् करनेका जिस माफक जैनशास्त्रोंमें जगे जगे लिखे है, तिसि माफक हम इनोके हितके वास्ते कुछ आप श्रावकोंको कहते है. तथाच जीवानुशासनवृत्तौ श्रीदेवस्वरिनिः प्रोक्तं ॥ यदि पुनर्गङ्गो गुरुश्च सर्वथा निजगुणविकलो नवति तत आगमोक्तविधिना त्यजनीयः परं कालापेक्षया योऽन्यो विशिष्टतरस्तस्योपसंपन्नाया न पुनः स्वतंत्रैः स्थातव्यमिति हृदयं । इति जीवानुशासनवृत्तौ । इसकी जापा लिखते है जेकर गङ्ग और गुरु यह दोनो सर्वथा निजगुण करके विकल होवे तो, आगमोक्त विधि करके त्यागने योग्य है, परं कालकी अपेक्षायें अन्य कोइ विशिष्टतर गुणवान संयमी होवे, तिस समीपें चा रित्र उपसंपत् अथात् पुनर्दीक्षा ग्रहण करनी परंतु उपसंपदाके लीया विना स्वतंत्र अर्थात् गुरुके विना रहणा नही इस कहनेका तात्पर्यार्थ यह है के जो कोइ शिथिलाचारी असंयमी क्रिया उधार करे सो अवश्यमेव संयमी गुरुके पास फेरके दीक्षा लेवे. इस हेतुसं रत्नविजयजी अरु धनविजयजीको उचित है के प्रथम किसी संयमी गुरुके पास दीक्षा लेकर पीठे क्रिया उधार करे तो आगमकी आज्ञाचंग रूप



दूषणमें बच जावे और इनको साधु माननेवाले श्रावकोंका मिथ्यात्वनी दूर हो जावे, क्योंकि असा धुकों साधु मानना यह मिथ्यात्व है और विना चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षाके लीये कदापि जैनम तके शास्त्रमें साधुपणा नही माना है.

तथा महानिशीथके तीसरे अध्ययनमें ऐसा पाठ है ॥ सत्तठ गुरुपरंपरा कुसीले, एग डु ति परंपरा कु सीले ॥ इस पाठका हमारे पूर्वाचार्योंने ऐसा अर्थ करा है, इहां दो विकल्प कथन करनेसें ऐसा मालुम होता है के एक दो तीन गुरु परंपरा तक कुशील शिथिलाचारीके दूएनी साधु समाचारी सर्वथा उच्चि न्न नही होती है, तिस वास्ते जेकर कोइ क्रिया उद्धार करे तदा अन्य संजोगी साधुके पाससें चारित्र उपसं पदा विना दीक्षाके लीयांनी क्रिया उद्धार हो शक्ता है, और चोथी पेढीसें लेकर उपरांत जो शिथिलाचा री क्रिया उद्धार करे तो अवश्यमेव चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षा लेकेही क्रिया उद्धार करे अन्यथा नही.

अथ जेकर प्रमोदविजयजीके गुरुनी संयमी होते तब तो रत्नविजयजी विना दीक्षाके लीयांनी क्रिया उद्धार करते तोनी यथार्थ होता, परंतु रत्न

विजयजीकी गुरुपरंपरा तो बहु पेढीयोंसे संयम र हित थी इस वास्ते जेकर रत्नविजयजी आत्महितार्थी होवे तो, इनकां पक्षपात ठोडके अवश्यमेव किसी संयमी गुरु समीपे दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा चाहिये, क्योंकि धनविजयजीनें अपनी बनाइ पूजा में जो गुर्वावली लिखी है सो ऐसी है १ देवसूरि, २ प्रनसूरि, ३ रत्नसूरि, ४ ह्रमासूरि, ५ देवेंडसूरि, ६ कल्याणसूरि, ७ प्रमोद, अरु ८ विजयराजेंडसूरि इनकी तीसरी चौथी पेढीवाले तो संयमी नहीं थे इस वास्ते रत्नविजयजीकों नवीन गुरुके पाससे संयम लेके क्रिया उद्धार करना चाहियें जेकर पूर्वोक्त रीतीसे क्रिया उद्धार न करेगें तो जैनमतके शास्त्रोंकी श्रद्धावाले इनको जैनमतके साधु क्योंकर मानेगे ?

इत्यादि रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों मिथ्या त्वरूप काद्वयमें निकालके सम्यक्त्वरूप शुद्ध मार्ग पर चढ़ानेमें हितकारक, ऐसा करुणाजनक उपदेश श्रीमन्महाराज श्रीआत्मारामजीके मुखमें सुनके हम नव श्रायकर्ममल बहोत आनंदित नये, उती वख त हम निश्चय कर ररका के जब महाराज साहेब चार स्तुतिके निर्णयका ग्रंथ बनाकर हमको देवेगे,

तब हम सब देसोंके श्रावकोंको अरु विहार करणे वाले साधुओंको जानने वास्ते ये ग्रंथको उपवाय कर प्रसिद्ध करेगें तब पूर्वोक्त रत्नविजयजीके हितार्थक सूचनाजी येही ग्रंथके प्रस्तावनामें लिख देवेगें, जिस्में रत्नविजयजीनी यह बातकूं जानकर अपह्णपाति होके आपही अपनी चूलका पश्चात्ताप करके शुद्ध गुरुके पास चारित्र उपसंपत् लेके अपना जो अवश्यकार्य करनेका है. सो कर लेवेगें, तिस्में इनके पर महाराज साहेबकाजी बडा उपकार होवेगा, क्योंकि पूर्वाचार्योंकी चली हुई समाचारीका निषेध करके नवीन पंथ निकालनेसें कितनेक अल्प समज वाले जीवोंका चित्त व्युदग्रहित हो जाता है अरु नवीन नवीन प्रवर्ति देखनेसें कितनेक जीवोंकी श्रद्धाजी त्रष्ट हो जाती है तिस्में वो जीव धर्मकरणी करणेका उद्यमही ठोड देता है, इसीतरें श्री वीतरागके मार्गमें बडा उपड्व करनेका उद्यम ठोड देवेगें जिस्में इनको बहोत लाभ होवेगा. अरु जैनमार्गका शुद्ध निर्दोष प्रवृत्ति चलनेसें शासनकाजी अह्वा प्रभाव दिखेगा, ऐसा हमारा अनिप्राय था सो प्रस्तावनामें लिखके पूरण करा.

अब सकल देश निवासी श्रावकादि चतुर्विध श्रीसंघकों हमारी यह प्रार्थना है के पडिक्कमणोमें चार थोयों कहेनेकी रूढी यद्यपि परंपरासें चली आती है, सो कोइ मतलबी पुरुष अपना किसी प्रकारका मतलब साधनेके लीये चार थोयोंके बदलेमें तीन अथवा दो किंवा एकज थोय कहेनेकी प्ररूपणा जो करते हैं उनका कहेना जो विवेकी जाणकार पुरुष है उनके हृदयमें तो प्रवेश नहीं कर शक्ता, परंतु कितनेक अज्ञ अरु अल्पसमजवाले जोले लोक है उनके हृदयमें कदापि प्रवेशनी कर शक्ता है, तो उन जोले लोकोंकों ये ग्रंथका उपदेश हो जावेगा. जिस्से उनको पूर्वोक्त मतवादीयोंका उपदेश पराजव न कर शकेंगा. ऐसा उपकार बुद्धिसें यह महाराज श्रीमद् आत्मारामजी आनंदविजयजीने जो इस विषय पर ग्रंथ बनाया, सो हम ठपचाय कर प्रसिद्ध कीया है. इस्में श्रीजिनशासनकी यथार्थ प्रवृत्ति जो परंपरासें चली आती है सो अखणित रहो अरु बहुल संसारो हो नेकी बीरु न रखने वाले मतिचेदक जनोकी जो जैन मतमें विपरीत प्रवृत्ति है सो खणित हो जाउ. यह ह माग आशीर्वाद है. किंबहुना.

## इसग्रंथमें जे जे शास्त्रोंकी साख दिनी है तिसका नाम.



यहां कहीं कहीं एक ग्रंथका जो दोवार तीन वार नाम लिखा है, सो न्यारे न्यारे प्रयोजन वास्ते है. कहीं चौथी शुद्ध वास्ते, कहीं श्रुतदेवता क्षेत्रदेवता वास्ते, कहीं सप्तवार चैत्यवंदनाकी गिनती वास्ते, इत्यादि अन्य अन्य प्रयोजनके वास्ते कहीं कहीं किसी किसी ग्रंथके दो तीन वार नाम लिखे है. इस वास्ते पुनरुक्त है ऐसा समजना नही ॥

१ धर्मरत्न देवेंद्रसूरिकृत.

२ जीवानुशासन श्रीदेवसूरिकृत.

३ श्रीमहानिशीथ गणधरकृत.

४ पंचाशक हरिजसूरिकृत.

५ महानाथ शांत्याचार्यकृत.

६ विचारामृतसंग्रह श्रीकुलमंदनसूरिकृत.

७ प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति श्रीनेमिचंद्रसूरिकृत मूल और श्रीसिद्धसेनसूरिकृतवृत्ति.

८ पुनः पंचाशकवृत्ति श्रीअनयदेवसूरिकृत.

- ९ उपदेशपदवृत्ति श्रीमुनिचंद्रस्रिकृत.  
१० ललितविस्तरापंजिका श्रीमुनि०  
११ पुनः महानाथ्य शांत्याचार्यकृत.  
१२ कल्पनाथ्य संघदासगणिकृत.  
१३ पुनः महानाथ्य शांतिस्रिकृत.  
१४ पुनः महानाथ्य शांतिस्रिकृत.  
१५ व्यवहारनाथ्य संघदासगणिकृत.  
१६ संघाचारनाथ्यवृत्ति धर्मघोषस्रिकृत.  
१७ कल्पसामान्यचूर्णि पूर्वधरकृत.  
१८ कल्पविज्ञोपचूर्णि पूर्वधराचार्यकृत.  
१९ कल्पवृहन्नाथ्य पूर्वधराचार्यकृत.  
२० आवश्यकवृत्ति हरिचंद्रस्रिकृत.  
२१ वंदनकपज्ञा०  
२२ प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति०  
२३ यतिदिनचर्या श्रीदेवस्रिकृत.  
२४ ललितविस्तरा श्रीहरिचंद्रस्रिकृत.  
२५ पुनः प्रवचनसारोद्धारसूत्रम्.  
२६ पुनः प्रवचनसारोद्धारवृत्ति०  
२७ पुनर्महानाथ्यं शांतिस्रिकृत.  
२८ पुन. यतिदिनचर्या श्रीदेवस्रिकृत.

- ३९ पुनः यतिदिनचर्या ०  
३० पुनः यतिदिनचर्या ०  
३१ समाचारी प्राचीनाचार्यकृत.  
३२ यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.  
३३ पुनः यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.  
३४ पुनः यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.  
३५ पंचवस्तु श्रीहरिचंद्रसूरिकृत.  
३६ वृंदावृत्तिः  
३७ योग्यशास्त्र हेमचंद्रसूरिकृत.  
३८ श्राद्धविधि रत्नशेखरसूरिकृत.  
३९ प्रतिक्रमणगर्भहेतुश्रीजयचंद्रसूरि विरचित.  
४० संघाचारवृत्ति धर्मघोषसूरिकृत.  
४१ पादिकसूत्रगणधरादिरचित.  
४२ पादिकसूत्रचूर्णि पूर्वधरकृत.  
४३ वसुदेवहिंमि पूर्वधरकृत.  
४४ आवश्यकार्थदीपिका श्रीरत्नशेखरसूरिकृत.  
४५ आवश्यकचूर्णि पूर्वधरकृत.  
४६ आवश्यककायोत्सर्गनिर्युक्ति श्रीचंद्रबाहु ०  
४७ बृहन्नाथ्य शांतिसूरिकृत.  
४८ विधिप्रपा जिनप्रज्ञसूरिकृत.

- ४९ धर्मसंग्रह मानविजयजी उपाध्यायकृत.  
 ५० लघुजाप्य श्रीदेवेन्द्रसूरिकृत.  
 ५१ वंदनकचूर्ण पूर्वधरकृत.  
 ५२ धर्मसंग्रहेके अंतरगत गाथा पूर्वाचार्यकृत०  
 ५३ बृहत्वरतरमाचारी जिनपत्यादिसूरिकृत.  
 ५४ प्रतिक्रमणसूत्रकी लघुवृत्ति तिलकाचार्यकृत.  
 ५५ समाचारी अन्नयदेवसूरिकृत.  
 ५६ सोमसुंदरसूरि कृत समाचारी.  
 ५७ समाचारी देवसुंदरसूरिकृत.  
 ५८ समाचारी नरेश्वरसूरिकृत.  
 ५९ तिलकाचार्यकृत विधिप्रपा.  
 ६० समाचारी तिलकाचार्यकृता.  
 ६१ प्रतिक्रमणहेतुगर्जितस्वाध्याय श्रीमडुपाध्याय य  
 शोविजयगणिकृत.  
 ६२ पडावश्यकविधि पूर्वाचार्यकृत  
 ६३ पंचाशकसूत्र श्रीहरिन्द्रसूरिकृत मूलसूत्र, अरु  
 वृत्ति श्रीअन्नयदेवसूरिकृत.  
 ६४ जीवानुशासनवृत्ति श्रीदेवसूरिकृत.  
 ६५ आवश्यकनिर्युक्ति श्रीनन्दाहुस्वामि चौदहपूर्व  
 धरकृत.





॥ श्रीजैनधर्मो जयतितराम् ॥

अथ

न्यायांनोनिधि-मुनिश्रीमद् “ आत्मारामजी आनंद  
विजयजी ” विरचित-

चतुर्य स्तुति निर्णयारूय ग्रंथ प्रारंभः ॥



तत्रादौ मंगलप्रक्रमः ।

( अनुष्टुप्वृत्तम् )

नमः श्रीज्ञातपुत्राय, महावीराय श्रेयसे ॥

रत्नत्रयनिधानाय, जिनेंजाय जगद्धिदे ॥१॥

( इष्वजावृत्तम् )

अन्या नपि स्तौमि जिनेंजचंजान् ,

ध्यायामि साक्षाद्भुतदेवतां च ॥

रत्नत्रयश्रीसमलंकृतांगान् , प्रार

ब्धसिद्ध्यै सुगुरून् श्रयामि ॥ २ ॥

शिष्टाः खलु क्वचिदनीष्टवस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेव  
तानमस्कारपूर्वकमेव प्रायः प्रवर्तते । इष्टदेवतानम

स्कारपूर्वकं प्रवर्तमानानां च देवताविषयशुचिनावस  
मूहविघ्नव्यपोहत्वेन प्रारब्धशास्त्रे प्रवृत्तिरपि अप्रतिह  
तप्रसरा स्यात् । अतः प्रथमं मंगलोपन्यासः ।

अग्निधेयं चात्र मुख्यवृत्त्या चतुर्थस्तुतिनिर्ण  
य एव, निरग्निधेये ( मंजूकजटाकेशगणनसं  
ख्यायामिव ) न प्रेक्षावतां प्रवृत्तिः । संबंधश्चा  
त्र वाच्यवाचकज्ञावो नाम व्यक्त एव, प्र  
योजनं तु चतुर्थस्तुतिसंशयगर्तपतितानां  
जनानामुद्धरणम्—इति ।

॥ यह वर्तमान कालमें रत्नविजयजी अरु धनवि  
जयजीने प्रतिक्रमणकी आदिकी चैत्यवंदनमें तीन  
शुद्ध कहेनेका पंथ चलाया है, सो जैनमतके शास्त्रा  
नुसार नही है, तिसका निर्णय लिखते हैं.

प्रथम जो रत्नविजयजी तीन शुद्धकी थापना क  
रते हैं सो हमने श्रावकोंके मुखसे इसी माफक सु  
नी है. एक बृहत्कल्पकी गाथा, दूसरी व्यवहार सू  
त्रकी गाथा, तीसरी आवश्यक सूत्रका पारिष्ठावणि  
या समितिका पाठ, चौथी पंचाशकवृत्ति यह चार  
ग्रंथोंके पाठानुसार करते हैं. तिनमेंजी पंचाशकवृ  
त्तिका पाठ अपनी श्रद्धाकों बहुत पुष्टिकारक मानते

हैं, इसवास्ते हमनी इहां प्रथम पंचाशकवृत्तिकाही पाठ लिखके चार शुद्धा निर्णय करते हैं ॥

सो पाठ इस प्रमाणे है ॥ उक्तंच पंचाशकेः—एव कारेण जहन्ना, दंमग शुद्ध जुञ्चल मधिमा एञ्चा ॥ संपुष्पा उक्कोसा, विहिणा खलु वंदणा तिविहा ॥ १ ॥ व्याख्या ॥ नमस्कारेण 'सिद्ध मरुय मणिंदिय, मक्कि य मणवद्य मञ्चुयं वीरं ॥ पणमामि सयलतिदु यण, मञ्चयचूडामणिं सिरसा' इत्यादिपाठपूर्वकनमस्क्रियालक्षणेन करणचूतेन क्रियमाणा जघन्या स्वल्पा पाठक्रिययोरल्पत्वाद्दंढना जवतीति गम्यं । उत्कृष्टादि त्रिजेदमित्युक्त्वापि जघन्यायाः प्रथममन्निधानं तदा दिशब्दस्य प्रकारार्थत्वान्न डुष्टं, तथा दंमकश्चारिहंतचे श्याणमित्यादिस्तुतिश्च प्रतीता तयोर्युगलं युग्ममेते एव वा युगलं दंमकस्तुतियुगलमिह च प्राकृतत्वेन प्रथमेकवचनस्य तृतीयैकवचनस्य वा लोपो ऽष्टव्यः, मध्यमाजघन्योत्कृष्टा पाठक्रिययोस्तथाविधत्वादेतच्च व्याख्यानमिमां कल्पनाप्यगाथामुपजीव्य कुर्वति । तद्यथा ॥ निस्सकडमनिस्सकडे, वावि चेऽ ए सबहिं शुद्ध तिस्मि ॥ वेलं व चेऽयाणि, विणाउं एकक्किया वा वि ॥ यतो दंमकावसाने एका स्तुतिर्दीयत इति दंम

कस्तुतिरूपं युगलं नवति । अन्येत्वाद्दुः, दंभकैः शक्रं  
 स्तवादिभिः स्तुतियुगलेन च समयनापया स्तुतिचतु-  
 ष्टयेन च रूढेन मध्यमा ज्ञेया बोधव्या, तथा संपूर्ण  
 परिपूर्णा सा च प्रसिद्धदंभकैः पंचभिः स्तुतित्रयेण  
 प्रणिधानपाठेन च नवति चतुर्थस्तुतिः किलावाची  
 नेति किमित्याह उत्कृष्यत इत्युत्कर्षात्कृष्टा इदं च  
 व्याख्यानमेके 'तिस्रि वा कट्टई जाव, शुइत्त तिसिलोगि  
 या ॥ ताव तन्न अणुस्सायं, कारणेण परेण वी' त्येतां  
 कल्पनाष्यगाथां ' पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ' इति वच-  
 नमाश्रित्य कुर्वन्ति अपरेत्वाद्दुः पंचशक्रस्तवपाठोपेता  
 संपूर्णेति विधिना पंचविधानिगमप्रदक्षिणात्रयपूजा  
 दिग्गणेन विधानेन ॥ खलुर्वाक्यालंकारे अवधारणे  
 वा तत्प्रयोगं च दर्शयिष्यामः वंदना चैत्यवंदना त्रि-  
 विधा त्रिभिः प्रकारैः त्रिप्रकारैरेव नवतीति ॥

अस्य नाषा ॥ नमस्कार करके " सिद्ध मरुय  
 मणिंदिय, मक्किय मणवत्तमच्चुयं वीरं ॥ पणमामि स  
 यल तिद्दुयण, मत्तय चूडामणिं सिरसे" त्यादि पाठ पू-  
 र्वक नमस्कार लक्षण करणचूत करके क्रियमाण न-  
 मस्कार जघन्य वंदना होती है. पाठ क्रियाके अल्प  
 होनेसे उत्कृष्टादि तीन नेद ऐसे कहकरकेनी प्रथम

जघन्यका कथन करा तिस आदि शब्दकों प्रकारार्थ होनेसें इष्ट नहीं है. यह जघन्य चैत्यवंदना ॥ १ ॥

तथा दंभक अरिहंतचेश्याणं इत्यादि. स्तुति जो है सो प्रसिद्ध है तिन दोनोका युगल जोडा अथवा दंभकस्तुतिही युगल दंभकस्तुतियुगल इहां प्राकृत जापा होने करके प्रथम विनक्तिका एक वचन वा तृतीय विनक्तिके एक वचनका लोप जानना. यह मध्यमपाठक्रियाके होनेसें मध्यमा चैत्यवंदना.

यह व्याख्यान इस कल्पनाप्यकी गाथाकों लेके करते हैं. तद्यथा निस्सकडमनिस्सकडे, वाविचेईएसवहिं शुई तिस्सि ॥ वेलं व चेश्याणि, विणाउं एक्क क्किया वा वि ॥ १ ॥ जिस हेतुसें दंभकके अवसानमे एक स्तुति देते हैं, ऐसे दंभक स्तुतिरूप युगल होता है, अन्य ऐमें कहते हैं शक्रस्तवादि पांच दंभक करके, और स्तुति युगल करके, सिद्धांत जापा करके, स्तुति चार रूढ करके अर्थात् दंभक पांच और स्तुति चार करके जो चैत्यवंदना करे सो मध्यम चैत्यवंदना जाननी ॥ ३ ॥

तथा संपूर्ण परिपूर्णा सो प्रसिद्ध दंभक पांच करके, और स्तुति तीन करके, और प्रणिधान पाठ करके, होती है चोथी शृङ्ग अर्वाचीन है, इसी वास्ते अ

हण करी नही तव क्या दूआ, यह उत्कृष्टी चैत्यवं  
दना दुइ ॥ ३ ॥

यह व्याख्यान कोइ एक तो 'तिसिवा कटई जाव,  
शुइउ तिसिलोगिया ॥ ताव तब अणुस्मायं, कारणेण  
परेणवि ॥ १ ॥ इस कल्पनाष्य गाथाकों " पणिहाणं  
मुत्त सुत्तिए" इस वचनकों आश्रित्य होकर करते है ॥

अन्य ऐसे कहते हैं के पंचशक्रस्तवपाठसहित सं  
पूर्ण चैत्यवंदना होती है. विधि करके पंचविध अ  
निगम, तीन प्रदक्षिणा, पूजादि लक्षण विधान कर  
के, खलु शब्द वाक्यालंकारमें है, वा अवधारणमें  
है, तिसका प्रयोग आगे दिखलाउंगा जैसे चैत्यवं  
दना तीन प्रकारें है.

उपर लिखेका सारार्थ यह हैके कल्पनाष्य गाथाके  
अनुसारसें कोइ एक तो मध्यम चैत्यवंदनाका स्वरूप  
पंचदंभक और चार शुईके पढनेसें मानता है ॥ १ ॥  
और कोइक तो पंच दंभक अरु तीन शुई अरु प्रणि  
धान पाठ सहित पढेसें उत्कृष्ट चैत्यवंदन मानता है,  
और चौथी शुईकों अर्वाचीन मानके तिसका ग्रहण  
नही करता है ॥ २ ॥ और कोइक तो पांच शक्रस्त  
व, आठशुईकी चैत्यवंदना अरु पंच अनिगम, तीन

प्रदक्षिणा, पूजादि संयुक्त इतकों उत्कृष्ट चैत्यवंदना मानता है ॥ ३ ॥

यह तीन मत अजयदेव सूरिजीने दिखलाएहैं परंतु इन तीनों मतोंमेंसे अजयदेवसूरिजीने सम्मत वा असम्मत कोइजी मतकों नहीं कहाहैं. तो फेर रत्न विजयजी अरु धनविजयजीकों कहेतेहैंके अजयदेव सूरिजीने पंचाशकमें चौथी थुई अर्वाचीन कही है. जला, कदापि ऐसा कहना साक्षर सुबोध पुरुषोंका हो शक्ता है. क्योंकि अजयदेव सूरिजीने तो किसीके मतकी अपेक्षासे चौथी थुई अर्वाचीन कही है, परंतु स्वमतसम्मत न कही है.

अब बुद्धिमानोंकों विचारना चाहियेंके कल्पनाय्य गाथाके अनुसार मध्यम चैत्यवंदनामें चारथुई कही, अने पंचशकस्तव रूप उत्कृष्ट चैत्यवंदनामें आठ थुई कहनी कही. इन दोनों पंचाशकके लेखोंकों ठोडके एक मध्यके तीसरे पक्षकोंही मानना यह क्या सम्यग् दृष्टियोंका लक्षण है?

कदापि रत्नविजयजी अरु धनविजयजी जैसें मान लेवेके शास्त्रमें तीन थुईजी किसीके मतसें कही है. और चार थुईजी कही है ये दोनों मत कहे है; इन



मेंसें हम एककाजी निषेध नहीं करते हैं, परंतु हमारे तपगङ्गके पूर्वाचार्य तथा अन्य गङ्गोंके आचार्य सब चार शुद्ध मानते आएहैं इस वास्ते हमजी चार शुद्ध मानते हैं तो इनकी क्या हानी है ?

हमारा अनुभव मुजब अन्य तो कोइनी हानी दिखनेमें नहीं आती है; परंतु जिन आवकोंके आगें प्रथम अपने मुखसें तीन शुद्धकी श्रद्धा प्ररूप चूके हैं फेर तिनके आगें चार शुद्धकी प्ररूपणा करनेसें लज्जा आती है. उनकुं हम कहते हैं के हे नव्य लज्जा रखनेसे उत्सृत्र प्ररूपणा करनी पडती है. इस्सें संसारका तरणा कदापि नहीं होवेगा, परंतु पंचाशककी कथन करी जो चार वा आठ शुद्ध तिन का निषेध करनेसें उलटी संसारकी वृद्धि होनेका संभव होता है, तो इस्स हमारे लेखकों बांचकर जो नव्यजीव मतपरूपातसें रहित होवेगा सो कदापि चार शुद्धका निषेध अरु तीन शुद्धके माननेका आयह न करेगा ॥ इति पंचाशक पाठनिर्णय ॥ १ ॥

प्रश्नः—पंचाशकजीमें चौथी शुद्धकुं किसीके मत प्रमाणसें श्रीअनयदेव सूरिजीये अर्वाचीन कही है? अरु वो अर्वाचीन पदका क्या अर्थ है ?

उत्तरः—हे ज्यो जो वस्तु आचरणसें करी जावे तिसकों अर्वाचीन कहते हैं.

प्रश्नः—आचरणा किसकूं कहते हैं ?

उत्तरः—उत्तराध्ययनकी बृहद्वृत्तिका करणहार महाप्रजाविक स्थिरापद्भिर्गणैकमंमन आचार्य श्री वाद्विवेताल शांतिसूरिजीने संघाचार नामक चैत्यवंदन महाजाप्य करा है, तिसमें आचरणाका स्वरूप ऐसा लिखा है ॥ जाप्यपाठः ॥ तीसेकरणविहाणं, नवइ सुत्ताणुसारउ किंपि ॥ संविग्गायरणाउ, किचीउ जयंपि तं जणिमो ॥ १५ ॥ पुढइ सीसो जयवं, सुत्तो इयमेव साहिउ जुत्तं ॥ किं वंदणाहिगारे, आय रणा कीरइ सहाया ॥ १६ ॥ दीसइ सामन्नेणं, बुत्तं सुत्तंमि वंदणविहाणं ॥ नवइ आयरणाउ, विसेस करणक्रमो तस्स ॥ १७ ॥ सुयणमेत्तं सुत्तं, आयरणा उय गम्मइ तयडो ॥ सीसायरियकमेणहि, नवन्ते सिप्पसड्डाइ ॥ १८ ॥ अन्नंच ॥ अंगो वग पइन्नय, नेया सुअसागरो खडु अपारो ॥ को तस्स मुणइ मझं, पुरिसो पंमिच्चमाणी वि ॥ १९ ॥ कितु सुहजा ण जण गं, जं कम्मखयावहं अणुष्ठाणं ॥ अंगसमुदे स्संदे, जणिय चियतं जउ जणियं ॥ २० ॥ सब प्पवा

यमूलं, डुवालसंग जउ समस्कायं ॥ रयणायरतुद्धं ख  
 लु, ता सव्वं सुंदरं तंमि ॥ ११ ॥ वोढिन्ने मूलसुए,  
 विंडुपमाणंमि संपइ धरंते ॥ आयरणाउ नवइ, परम  
 ढो सव्वकव्वेसु ॥ १२ ॥ जणियंच ॥ बहुसुय कमाणुप  
 त्ता, आयरणा धरइ सुत्त विरहेवि ॥ विप्राए विपई  
 वे, नवइ दिठं सुदिठीहिं ॥ १३ ॥ जीवियपुवं जीव  
 इ, जीविस्सइ जेण धम्मिय जणंमि ॥ जीयंति ते  
 ए जन्नइ, आयरणा समय कुसलेहिं ॥ १४ ॥ तद्दा  
 अनाय मूला, हिंसारहिया सुजाण जणणीय ॥ सूरि  
 परं परपत्ता, सुत्तवपमाण मायरणा ॥ १५ ॥

व्याख्या:—तिस चैत्यवंदना करनेके चिन्नप्रकारका  
 विधिजेद कितनेक तों सूत्रानुसार जाने जाते है,  
 और कितनेक संविग्र गीतार्थोंकी आचरणासैं जाने  
 जाते है, अरु कितनेक पूर्वोक्त दोनोसैं जाने जाते  
 है, यह तीन प्रकारसैं मैं चैत्यवंदनाका स्वरूप  
 कहताहूं ॥ १५ ॥

शिष्य पूठता है के, हे जगवन् सूत्रकी वार्ताही  
 कहनी युक्त है, क्यों तुम वंदनाके अधिकारमें आ  
 चरणाकी सहायता लेतेहो ॥ १६ ॥

गुरु कहते हैं हे शिष्य सूत्रमें चैत्यवंदनाका वि

दिके जेद सामान्यमात्र संक्षेपमात्र करके कहे हैं।  
 तिस चैत्यवन्दनाके करनेका जो क्रम है सो विशेष  
 करके आचरणसँ जाना जाता है ॥ १७ ॥ क्योंकि  
 सूत्र जो है सो सूचना मात्र है, च पुनः आचरण  
 सँ तिस सूत्रका अर्थ जाना जाता है, जैसें शिष्य  
 शास्त्रजी शिष्य अरु आचार्य के क्रम करके जाना जा  
 ता है; परंतु स्वयमेव नही जाना जाता है ॥ १७ ॥  
 तथा अन्य एक बात है ॥ अंगोपांग प्रकीर्णक  
 जेद करके श्रुत सागर जो है सो निश्चय करके अ  
 पार है कौन तीस श्रुतसागरके मध्यकूं अर्थात् श्रुत  
 सागरके तात्पर्यकूं जान सकता है, अपणे ताई चा  
 हो कितनाही पंफितपणा क्यो न मानता होवे?  
 ॥ १८ ॥ किंतु जो अनुष्ठान शुद्ध ध्यानका जनक  
 होवे और कर्मोंके दूय करने वाला होवे, सो अनु  
 ष्ठान आवश्यमेव शास्त्रअंग शास्त्ररूप समुद्रके विस्ता  
 रमें कहा दूआही जानना, जिस वास्ते शास्त्रमें ऐ  
 से कहा है ॥ १७ ॥ सर्व शुचानुष्ठानके कहने वाले  
 षाडगांग हैं क्योंकि षाडगांग जे है वे रत्नाकर समु  
 द्र अथवा रत्नाकी खानितुल्य है, तिस वास्ते जो शु  
 चानुष्ठान है सो सर्व वीतरागकी आज्ञा होनेसँ सुं

दर है तिस श्रुतरत्नाकरमें ॥ ११ ॥ मूल सूत्रोंके व्य  
वहेद हुए, और विंडु मात्र संप्रतिकालमें धारण क  
रते हुए अर्थात् विंडु मात्र मूल सूत्रके रहे, तिस  
सूत्रसें सर्वानुष्ठानकी विधि क्योंकर जानी जावे, इस  
वास्ते आचरणासेंही सर्व कर्तव्यमें परमार्थ जाना  
जाता है ॥ १२ ॥

कहानि है के बहु श्रुतोंके क्रम करके जो प्राप्त  
हूइ है आचरणा सो आचरणा सूत्रके विरहमें सर्वा  
नुष्ठानकी विधियों धारण करती है, जैसें दीपकके  
प्रकाशसें नली दृष्टीवाले पुरुषोंने कोइक घटादिक  
वस्तु देखी है सो वस्तु दीपकके बूजगयें पीठेजी स्व  
रूपसें नूलती नही है, ऐसेंही आगम रूप दीपकके  
बूजगएजी आगमोक्त वस्तु आचरणासें सम्यक्दृष्टी  
पुरुष आचार्योंकी परंपरासें जानते हैं इसका नाम  
आचरणा कहते हैं ॥ १३ ॥

तथा धर्मीजनो मे पूर्वकालमें जीताथा और वर्त  
मानमें जीवे है अरु अनागत कालमें जीवेगा जैन  
शास्त्रमें कुशल तिसकों जित कहते है तिस जीतका  
नामही आचरणा कहते है ॥ १४ ॥

तिस वास्ते जो अज्ञातमूल होवे, जिसकी खबर

न होवे के यह आचरणा किस आचार्यनें किस का लमें चलाइ है, तिसकूं अज्ञातमूल कहते है ऐसी अज्ञात मूल आचरणा हिंसारहित और शुद्धध्यान की जननी होवे, अरु आचार्योंकी परंपराय करके प्राप्त होवे, तिस आचरणाकों सूत्रकी तरे प्रमाणचू त माननी चाहिये ॥ १५ ॥ इति नाथ्यवचनात् आचरणाका स्वरूप.

तथा श्रीप्रवचनसारोद्धार वृत्तिमेंनी ऐसा लेख है. इयं स्तुतिश्चतुर्थी गीतार्थाचरणेनैव क्रियते गीतार्थाचरणं तु मूलगणधरज्ञपितमिव सर्व विधेयमेव सर्वैरपि मुमुक्षुजिरिति ॥ अस्य ज्ञापा ॥ यह चौथी शुद्ध गीतार्थोंकी आचरणासें करीये है और गीतार्थोंकी जो आचरणा है, सो मूल गणधरोंके कथन करे समान सर्व मोक्षार्थी साधुयोंकों सर्व करणे योग्य है. इस वास्ते चौथी शुद्ध जो कोइ निषेध करे सो मिथ्यात्वका हेतु है.

तथा जो कोइ चौथी शुद्धके अर्वाचीन शब्दका अर्वाक कालकी अंगीकार करी ऐसा अर्थ समजते है तिनकी समजकी बहु चूल है, क्योंकि विचारामृत संग्रह ग्रंथमें श्रीकुलमंथन सूरिजीयें ऐसा लि

खा है के “श्रीवीरनिर्वाणात् वर्षसहस्रे पूर्वश्रुतं व्य  
वह्निन्नं ॥ श्रीहरिजिज्ञसूरयस्तदनु पंचपंचाशता वर्षैः  
दिवं प्राप्ताः तद्ग्रंथकरणकालाञ्चाचरणायाः पूर्वमेव  
संज्ञवात् श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गः पूर्वधरकालेपि संज्ञ  
वति स्मेति ॥

अस्यजाषा ॥ जगवंत श्रीमहावीरजीके निर्वाण  
सैं हजार वर्ष व्यतीत हुए पूर्वश्रुतका व्यवहेद हुआ,  
तदपीठे पचपन ( ५५ ) वर्ष बीते श्रीहरिजिज्ञसूरिजी  
स्वर्ग प्राप्त हुए, वो श्रीहरिजिज्ञसूरिजीके ग्रंथकरण  
कालसैं पहिलाही आचरणा चलती थी इस वास्ते  
श्रुतदेवतादिकका कायोत्सर्ग पूर्वधरोंके काल  
मेंनी संज्ञवथा ॥

अब विचारणा चाहिये के पूर्वधरोंकी अंगीकार  
करी हूइ आचरणाका निषेध करणेवाला दीर्घ संसा  
री विना अन्य कौन हो सक्ता है ? जैसे चौथी शु  
इनी हरिजिज्ञसूरिजीके ग्रंथ करणेसैं प्रथमही पूर्वधरों  
की आचरणासैं चलतीथी क्योंकि हरिजिज्ञसूरिकृत  
ललितविस्तरामें चौथी शुइका पाठ है, सो पाठ  
आगें लिखेंगे इसवास्ते अर्वाचीन कहो, चाहे  
आचरणा कहो, चाहे जीत कहो.

जेकर अर्वाचीन शब्दका अर्थ अन्यथा करीयें तो श्रीसिद्धसेनाचार्यकृत प्रवचनसारोद्धारकी टीका के साथ विरोध होता है, क्योंकि श्रीसिद्धसेनाचार्य चौथी शुद्ध आचरणार्सें करणी कही है.

तथा कोइ जैसे कहेके ललितविस्तरा १४४४ ग्रंथोंके करनेवाले श्रीहरिजिह्वसूरिजीकी करी दूइ नही है. किंतु अन्य किसी नवीन हरिजिह्वसूरिकी रचित है, यह कहनाजी महामिथ्या है, क्योंकि पंचाशककी टीकामें श्रीअजयदेवसूरिजी लिखते हैं के, जो ग्रंथ श्रीहरिजिह्वसूरिजीका करा दूआ है, तिसके अंतमें प्रायें विरह शब्द है, ॥ पंचाशक पाठः ॥ इह च विरह इति । सितांबर श्रीहरिजिह्वसूर्यस्य कृतेरंक इति ॥ यह विरह अंक ललितविस्तराके अंतमें है. और याकनी महत्तराके पुत्र श्रीहरिजिह्वसूरिनें यह ललितविस्तरा वृत्ति रची है, ऐसाजी पाठ है तो फेर ललितविस्तरा प्राचीन हरिजिह्वसूरिकृत नही, ऐसा वचन उन्मत्त विना अन्य कोइ कह सकता नही है.

तथा श्रीउपदेशपदकी टीकामें श्रीमुनिचंद्रसूरिजी ऐसा लिखते हैं ॥ तत्र मार्गो ललितविस्तराया मनेनेव शास्त्रकृतेर्बलकृणो न्यरूपि भग्गदयाणमि



त्यादि ॥ अस्यनाया ॥ तिहां जो मार्ग है सो ललितविस्तरामें इसही उपदेशपद शास्त्रके कर्ता श्री हरिजिज्ञसूरिजीने इस प्रकारके लक्षणवाला कहा है. इस कथनसे जौनसें श्रीहरिजिज्ञसूरिजीने उपदेशपद ग्रंथ करा है, तिसही श्रीहरिजिज्ञसूरिजीने ललितविस्तरावृत्ति करी है, यह सिद्ध होता है ॥

प्रश्नः—उपमितजवप्रपंचकी आदिमें जो सिद्धरुषिजीने लिखा है, के यह ललितविस्तरावृत्ति मेरे श्रीगुरु हरिजिज्ञसूरिजीने मेरे प्रतिबोध करने वास्ते रची है इस लेखसे तो ललितविस्तरावृत्तिकी कर्ता प्राचीन श्रीहरिजिज्ञसूरि सिद्ध नहीं होते हैं ?

उत्तरः—हे जय्य उपमितजवप्रपंचकी आदिमें सिद्धरुषिजीने 'अनागतं च परिज्ञाय' इत्यादि श्लोकमें जैसे लिखा है के श्रीहरिजिज्ञसूरिजीने मुजकों अनागत कालमें होनेवाला जानके मानुं मेरेही प्रतिबोध करने वास्ते यह ललितविस्तरावृत्ति रची है. और जो सिद्धरुषिजीने श्रीहरिजिज्ञसूरिकुं गुरु माना है, सो आरोप करके माना है. ऐसा कथन ललितविस्तरावृत्तिकी पंजिकामें करा है, इस वास्ते ललितविस्तरावृत्तिके रचने वाले १४४४ ग्रंथ कर्ता

श्रीहरिञ्जलसूरिजी हुए है; इति आचरणास्वरूप ॥

पूर्वपक्ष ॥ श्रीवृहत्कल्पका ज्ञाप्यकी गाथामें तीन शुष्की चैत्यवंदना करनी कही है, ऐसेही पंचाश कवृत्ति तथा श्राद्धविधि तथा प्रतिमाशतक, संघा चारवृत्ति, धर्मसंग्रह और तुमारा रचा हुआ जैनतत्त्वादर्शादि अनेक ग्रंथोंमें यही कल्पज्ञाप्यकी गाथा लिखके तीन शुष्की चैत्यवंदना कही है, तो फेर तुम क्यों नहीं मानतेहो ?

उत्तर—हे सौम्य हमतो जो शास्त्रमें लिखा है तथा जो पूर्वाचार्योंकी आचरणा है इन दोनोंको सत्य मानते है; परंतु तेरेको वृहत्कल्पका ज्ञाप्यकी गाथाका तात्पर्य नहीं मालुम होताहै, इस वास्ते तुं तीन शुष्की तीन शुष् पुकारता है ! क्योंकि महाज्ञाप्यमें नवजेदें चैत्यवंदना कही है, तिनमेंसें तेरी तीन शुष्की वंदनाका ठग जेद है; तथाच महाज्ञाप्यपाठः ॥

एगनमोक्कारणं, होइ कणिष्ठा जहन्नञ्चा एसा ॥ जहसति नमोक्कारा, जहन्निया जन्नइ विजेष्ठा ॥ ५४ ॥ सच्चिय सक्कथयंता, नेया जेष्ठा ऊहन्निया सन्ना ॥ सच्चिय इरिआवहिया, सहिया सक्कथय दंनेहिं ॥ ५५ ॥ मप्पिमकणिष्ठा गेसा, मप्पिम मप्पिमउ होइ सा चेव ॥

चेश्य दंभय शुङ्ग, गसंगया सव्व मङ्गिमया ॥ ५६ ॥  
 मङ्गिम जेठा सञ्चिय, तिन्नि शुई उ सिलोयतियजुत्ता  
 ॥ उक्कोस कण्णिठा पुण, सञ्चिय सकब्बाइ जुया ॥ ५७ ॥  
 शुङ्ग जुयल जुयल एणं, इगुणिय चेश्य थयाइ दंभा जा  
 ॥ सा उक्कोस विजेठा, निदिठा पुव्वसूरीहिं ॥ ५८ ॥  
 योत्त पण्णिवाय दंभग, पण्णिहाण तिगेण संजुञ्जाएसा  
 ॥ संपुन्ना विन्नेया, जेठा उक्कोसिञ्जा नाम ॥ ५९ ॥

इनकी जापा ॥ एक नमस्कार करनेसें जघन्यजघ  
 न्य प्रथम जेद ॥ १ ॥ यथाशक्ति बहुत नमस्कार कर  
 नेसें जघन्यमध्यम दूसरा जेद ॥ २ ॥ नमस्कार पीठे  
 शक्रस्तव कहना, यह जघन्योत्कृष्ट तीसरा जेद ॥ ३ ॥  
 इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, चैत्यदंभक एक, ए  
 कस्तुति यह कहनेसें मध्यमजघन्य चौथा जेद ॥ ४ ॥  
 इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, चैत्यदंभक, एक शुई,  
 लोगस्स, कहनेसें मध्यममध्यम पांचमा जेद ॥ ५ ॥  
 इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, अरिहंत चेश्याणं  
 शुई, लोगस्स सबलोए शुई, पुस्करवर, सुयस्स शुई, सि  
 ष्याणंबुद्धाणं गाथा तीन इतना कहनेसें मध्यमोत्कृष्ट  
 षठा जेद ॥ ६ ॥ इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तवादिदंभक  
 पांच, स्तुति चार, नमोबुणं, जावंति एक, जावंत एक,

स्तवन एक, जयवीराराय, यह कहनेसें उत्कृष्ट जघन्य सातमा जेद ॥ ७॥ आठ शुई, दो-वार चैत्यस्तवादि दंमक, यह कहनेसें उत्कृष्ट मध्यम आठमा जेद ॥ ८॥ स्तोत्र, प्रणिपात दंमक, प्रणिधान तीन, इनो करके सहित आठ शुई, दो वार चैत्यस्तवादि दंमक, यह कहनेसें उत्कृष्टोत्कृष्ट नवमा जेद ॥ ९ ॥ जाप्यं ॥ ए सा नवप्पयारा, आइना वदणा जिणमयंमि ॥ का लोचियकारीणं, अणग्गहाणं सुहा सवा ॥ ६० ॥ अ स्यार्थः— यह पूर्वोक्त नव प्रकारे, नवजेदें, चैत्यवंदना श्रीजिनमतमें आचीर्ण है, आग्रहरहित पुरुष उचित कालमें जिसकालमें जैसी चैत्यवंदना करणी उचित जाणे, तिस कालमें तैसी चैत्यवंदना करे, तो सर्व न वजेद शुच है, मोक्षफलके दाता है ॥ ६० ॥ जाप्यं ॥ उक्कोसा तिविहाविहु, कायवा सत्तिउ उन्नय कालं ॥ सद्धेहिउ सविसेसं, जम्हा तेसिं इमं सुत्तं ॥ ६१ ॥ अ र्थ — उत्कृष्ट तीन जेदकी चैत्यवंदना, शक्तिके दूए उ न्नय कालमें करनी योग्य है. पुन. आवकोंने तो स विसेस अर्थात्, विगोप सहित करनी चाहियें, क्योंके ? आवकोंकेवास्तु ऐसा सूत्र कहा है ॥ ६१ ॥ जाप्यं ॥ वड्ड उन्नयउ कालं, पि चेइयाइ थयधुई परमो ॥ जि

एवर पडिमागरधू, व पुंप्फगंधञ्जणुद्युतो ॥ ६२ ॥

अर्थः— श्रावकजन उज्जयकालमें स्तोत्र स्तुति करके उत्कृष्ट चैत्यवंदना करे, कैसा श्रावक जिनप्रतिमाकी अंगर, धूप, पुष्प, गंध करके पूजा करनेमें अति उद्यम संयुक्त होवे ॥ ६२ ॥ ज्ञाप्यं ॥ सेसा पुणठप्रेया, कायवा देस काल मासव ॥ समणेहिं सावएहिं, चे इय परिवाडि माईसु ॥ ६३ ॥ अर्थः— श्रेष्ठ जयन्त्यके तीन अरु मध्यमके तीन मिलके ठ जेद चैत्यवंदनाके जो रहे है, सो देश काल देखके साधु श्रावकनें चैत्य परिवाडी आदिमें करणे आदि शब्दसें मृतक साधुके पर वव्या पीठें जो चैत्यवंदना करीयेहैं तिसमें करणे ॥ ६३ ॥

इस वास्ते हे सौम्य ठछा जेद तीन शुद्धसें जो चैत्यवंदना करनेका है, सो चैत्यपरिवाडिमें करणेका है, ए परमार्थ है, अरु तुम जो कल्पज्ञाप्यकी इस गाय्याकूं आलंबन करके चौथी शुद्धका तथा प्रतिक्रम एकी आद्यंत चैत्यवंदनाकी चौथी शुद्धका निषेध करते हो, सो तो दहिंके बदले कर्पास चक्षण करते हो ! इस्सें यहजी जाननेमें आता है के जैनमतके शास्त्रोंकाजी तुमको यथार्थ बोध नहीं है, तो फेर चौथी शुद्धका निषेध करनाजी तुमकों उचित नहीं है ॥ जणि

यंच श्रीकल्पनाष्ये गाथा ॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइ  
 ए सव्वहिं शुई तिन्नि ॥ वेलंच चेइयाणिय, नाठ इक्किक्कि  
 या वावि ॥ १ ॥ व्याख्या - एक निश्चाकृत उसकों  
 कहते हैं के जो गडके प्रतिबंधसे बना है, जैसा के ?  
 यह हमारे गडका मंदिर है, दूसरा अनिश्चाकृत सो  
 जिस उपर किसी गडका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व  
 जिनमंदिरोंमें तीन शुइ पढनी जेकर सर्व मंदिरोंमें  
 तीन तीन शुइ पढतां बहुत काल लगता जाने अरु  
 जिनमंदिरनी वदोत होवे तदा एक एक जिनमंदिर  
 में एकेक शुइ पढे, इस मुजब यह कल्पनाष्यगाथामें  
 निःकेवल चैत्यपरिपाटीमें तीन शुइकी चैत्यवंदना  
 पूर्वोक्त नव जेदोमेंसं ठठे जेदकी करनी कही है.  
 परंतु प्रतिक्रमणके आद्यंतकी चैत्यवंदना तीन शुइ  
 की करनी किसीनी जैनशास्त्रमें नहीं कही है.

यही कल्पनाष्यकी गाथाका लेख हमारे रचे  
 हुए जैनतत्त्वादर्श पुस्तकमें है, तिस लेखका यही  
 उपर लिखादूआ अनिप्राय है, तो फेर रत्नविजयजी  
 अरु धनविजयजी जैनशास्त्रका और हमारा अनि  
 प्राय जाने विना लोकोंके आगें कहते फिरते हैं के,  
 आत्मरामजिनेनी जैनतत्त्वादर्शमें तीनही शुइ क

ही है, ऐसा कथन करके जोड़े लोकोंमें प्रतिक्रमणके आद्यंतकी चैत्यवंदनामें चौथी शुद्ध ढोडावते फिरते हैं. तो हमारा अग्निप्रायेके जाने विनाहि लोकोंके आगे जूठा हमारा अग्निप्राय जाहेर करना यह कामक्या सत्पुरुषोंको करणा योग्य है ? जेकर आप दोनोको परजव विगडनेका जय होवेगा, तब इस कल्पजाप्यकी गाथाको आलंबके प्रतिक्रमणकी आद्यंत चैत्यवंदनामें चौथी शुद्धका कदापि निषेध न करेंगे, अन्यथा इनकी इत्ता. हमतो जैसा शास्त्रोमें लिखा है, तैसा पूर्वाचार्योंके वचन सत्यार्थ जानके यथार्थ सुना देते हैं, जो नवजीरु होवेगा, तो अवश्य मान्य लेवेगा ॥ इति कल्पजाप्यगाथा निर्णयः ॥

जेकर कोइ कहेगें श्रीहरिजिहसूरिजीने पंचाशकजीमें तीनही प्रकारकी चैत्यवंदना कही है, परंतु नवप्रकारकी नही कही है, इस वास्ते हम नव जेद नही मानेंगे. तिनकी अज्ञता दूर करणोकू कहते हैं ॥

जाप्यं ॥ ए एसिंनेयाणं, उवलस्कणमेव वन्नि  
या तिविहा ॥ हरिजिहसूरिणा विदु, वंदण पंचास  
ए एवं ॥ ६५ ॥ एवकारेण जहन्ना, दंभय शुद्ध जुअ

ल मन्निमा नेया ॥ संपुत्रा उक्कोसा, विहिणा खलु  
वदणा तिविहा ॥ ६६ ॥ एवकारेण जहन्ना, जह  
न्नयजहन्निया इमाखाया ॥ दंमय एगद्युइए, विन्नेया  
मप्पमप्पमिया ॥ ६७ ॥ संपुत्रा उक्कोसा, उक्कोसु  
क्कोसिया इमा सिहा ॥ उवलकणंखु एयं, दोएह दोएह  
सजाईए ॥ ६८ ॥ इनका अर्थ कहते हैं ॥

अर्थः—इन पूर्वोक्त नव जेदोंके उपलक्षण रूप  
तीन जेद चैत्यवंदनाके, वंदना पंचाशकमें श्रीहरिजि  
सूरिजीनेजी कथन करे हैं ॥ ६५ ॥- तिसमें एकतो  
नमस्कार मात्र करणे करके जघन्य चैत्यवंदना ॥ १ ॥  
दूसरी एक दंमक अरु एक स्तुति इन दोनोंके युग  
लसें मध्यम चैत्यवंदना जाननी ॥ २ ॥ तीसरी सं  
पूर्ण उत्कृष्टी चैत्यवंदना जाननी ॥ ३ ॥ विधि करके  
वंदना तीन प्रकारे हैं ॥ ६६ ॥ नमस्कार मात्र कर  
के जो जघन्य वंदना कही है ॥ सो जघन्यवंदनाका  
प्रथम जघन्य जघन्य जेद कहा है ॥ १ ॥ और दू  
सरी जो एक दंमक अरु एक स्तुतिसें मध्यम चैत्य  
वंदना कही है सो मध्यम मध्यम नामा मध्यम चै  
त्यवंदनाका दूसरा जेद कहा है ॥ २ ॥ ६७ ॥ सं  
पुत्रा उक्कोसा यह पाठसें संपूर्ण उत्कृष्ट उत्कृष्ट वं



दनाका तीसरा उत्कृष्टोत्कृष्ट नेद कहा है ॥ इन तीनों उपलक्षण रूप नेद कहनेसें शेष एकेक वंदनाके स्वजातीय दो दो नेदनी ग्रहण करना. एवं सर्व नव नेद चैत्यवंदनाके पंचाशकजीकी गाथायोंमें सिद्ध हुए हैं ॥ ६७ ॥ यह श्रीहरिजिज्ञसूरिजी जैन मतमें सूर्यसमान थे और उत्तराध्ययनजीकी बृहद्बृत्तिका कर्त्ता श्रीशांतिस्वरिजी महाप्रजावक, इनके रचे प्रकरण और जाप्यकों जो कोइ जैनमतिनाम धरा के प्रामाणिक न माने तिसके मिथ्यादृष्टि होनेमें जैनमति कोइ जव्य शंका नहीं करसक्ता है, इन दोनों आचार्योंने चौथी शुद्ध प्रमाणिक मानी है, सो आगे लिखेंगे. इति नवनेदसं चैत्यवंदनाका स्वरूप ॥

प्रश्नः—श्रीव्यवहारसूत्रकी जाप्यमें तीन शुद्धसं चैत्यवंदना करनी कही है. सो गाथा यह है ॥ तिन्निवा कट्टई जाव, शुद्ध तिसिलोइया ॥ ताव तच्च अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ १ ॥ अस्यार्थः ॥ श्रुतस्तवानंतरं तिस्रः स्तुतीस्त्रिश्लोकिकाः श्लोकत्रयप्रमाणा यावत् कुर्वते तावत्तत्र चैत्यायतने स्थानमनुज्ञातं कारणवशात् परेणाप्युपस्थानमनुज्ञातमिति वृत्तिः ॥ अस्य जाषा ॥ श्रुतस्तवानंतरं तीन शुद्ध

तीन श्लोक प्रमाण जहांतक कहियें तहांतक देहरे में रहनेकी आज्ञा है, कारण होवेतो उपरांतजी रहे ॥ औसा पाठ शास्त्रमें है तो फेर आप तीनशुद्ध की चैत्यवंदना क्यों नहीं मानतेहो ? ॥

उत्तर:—हे सौम्य तेरेकों इस गाथाका यथार्थ तात्पर्य मालुम नहीं है, इस वास्ते तुं तोतेकी तरें तीन शुद्ध तीन शुद्ध कहता है. इस गाथाका यह तात्पर्य है, सो तुं सुणके विचार ॥ ज्ञाप्यं ॥ सुत्ते एगविहञ्चिय, जणियातो नेय साहण मज्जुत्तं ॥ इयथूलमईकोई, जं पइ सुत्तं इमं सरिउ ॥ ११ ॥ तिन्निवाकट्टई जाव, शुद्ध तिसिलोइया ॥ ताव तच्च अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ १२ ॥ जणइ गुरुत्तं सुत्तं, चियइ वंदणविहि पखुवगं न चवे ॥ निक्कारणजिणमंदिर, परिजोग निवारगत्तेण ॥ १४ ॥ जं वा सदोपयडो, परकंतर सयगो तहिं अडि ॥ संपुन्नं वा वंदइ, कछइ वा तिन्निउथुई ॥ १५ ॥ एसोवि हु जावडो, संनवयइ इमस्स सुत्तस्स ॥ ता अन्नवं सुत्तं, अन्नं न जोइउं जुत्तं ॥ १६ ॥ जइ एत्तिमेत्तं विय, जिणवदण मणुमयं सुएहुंत ॥ शुद्धोत्ताइ पवित्ती, निरडिया होउ सवावि ॥ १७ ॥ संविग्गा विहि रसिया,

गीयन्तु तमाय, सूरिणो पुरिसा ॥ कहते सुत्त विरुद्धं,  
समायारीं परूवेति ॥ ३७ ॥ इनका अर्थ कहते हैं,  
सूत्रमें एक प्रकारेही चैत्यवंदना कही है, इस वास्ते  
नव चेद कहने अयुक्त है, ऐसा अर्थ कोइ स्थूलबु  
द्धि वाला इस सूत्रका स्मरण करके कहता है  
॥ ३३ ॥ तीनशुद्ध तीनश्लोक परिमाण जहांतक क  
हियें तहांतक जिन चैत्यमें साधुकों रहनेकी आज्ञा  
है, कारण होवे तो उपरांतजी रहे ॥ ३३ ॥

अब गुरु उत्तर देते हैं ॥ तन्निवा इत्यादि जो  
सूत्र है सो चैत्यवंदनाके विधिका प्ररूपक नहीं है,  
किंतु विना कारण जिनमंदिरके परिज्ञोग करनेका  
निषेध करने वाला है इस हेतु करके चैत्यवंदनाके  
विधिका प्ररूपक नहीं है ॥ ३४ ॥ तथा जो इस गा  
थामें वा शब्द है सो प्रगट पद्धान्तरका सूचक तिहां  
है, इस वास्ते संपूर्ण चैत्यवंदना करे, अथवा तीन  
शुद्ध कहे ॥ ३५ ॥ यहजी जावार्थ इस सूत्रका संज  
वे है, तिस वास्ते अन्यार्थका प्ररूपक सूत्र अन्यत्रा  
र्थमें जोडना युक्त नहीं है ॥ ३६ ॥ जेकर तीनशुद्ध  
मात्रही चैत्यवंदना करनेकी सूत्रमें आज्ञा होवे, तब  
तो शुद्ध स्तोत्रादिककी प्रवृत्ति सर्व निरर्थक होवेगी

॥ ३७ ॥ संविग्र गीतार्थ विधिके रसिये अतिशय करके गीतार्थस्वरि पुरुष जे पूर्वे होगए है, ते सूत्र विरुद्ध नवनेद चैत्यवंदनाकी समाचारी कैसे प्ररूपणा करते ॥ ३७ ॥ इस वास्ते हे सौम्य इस तेरी कही गाथासे चौथी शुद्धका निषेध और तीन शुद्धकी चैत्य वंदना सिद्ध नहीं होती है. तो फेर तुं क्युं हठ रूपीये जालमे फसता है ॥

तथा पद्मांतरं इस तिन्निवा इत्यादि गाथाका अर्थ श्रीसंघाचार नाप्यवृत्तिमें श्रीधर्मधोपाचार्य ऐसा करा है ॥ तथाच संघाचार वृत्तिः ॥ दुप्रिगंधमलस्सा वि, तणु रप्पे सएहाणिया ॥ उन्नउवा उवहोचेव, तेण षंतिनचेइए ॥ १ ॥ तिन्निवा कट्टई जाव, शुद्ध तिसि लोइया ॥ ताव तव अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ २ ॥ एतयोर्जावार्थः साधवश्चैत्यगृहे न तिष्ठति अथवा चैत्यवंदनांते शक्रस्तवाद्यनंतर तिस्रः स्तुतीः श्लोकत्रयप्रमाणाः प्रणिधानार्थं यावत्कुर्वते. प्रति क्रमणानंतर मंगलार्थं स्तुतित्रयपाठवत् तावच्चैत्यगृहे साधूनामनुज्ञानं निष्कारणं न परत. ॥

जापाः—इन दोनो गाथांका जावार्थ यह है ॥ साधुका शरीर दुर्गंधरूप दुर्गंधवाला होनेसे चैत्यगृहमें मर्यादा

उपरांत न रहे. सो मर्यादा यह है के, चैत्यवंदनाके अंतमें शक्रस्तवादिके अनंतर जो तीन शुई तीन श्लोक परिमाण प्रणिधानके वास्ते प्रतिक्रमणाके अनंतर मंगलार्थे स्तुति तीनके पाठवत् कही है, तहां ताई चैत्य जिनमंदिरमे रहनेकी आज्ञा है, कारणविना उपरांत न रहे. तात्पर्य यह हैके, संपूर्ण चैत्यवंदनाके करें पीठे विना कारण साधु जिनमंदिरमें न रहे इस व्याख्या न रूप बन्दिने हे सौम्य तेरे चौथी शुईके निषेध करणे रूप इंधनकों जस्मसात् करमाजा है, इस वास्ते तेरा तीन शुईका मत पूर्वाचार्योंके मतसे विरुद्ध है, तो अब तुंजी इसमतकों जलांजली दे. इति व्यवहार चाष्य गाथा निर्णयः ॥

पूर्वपदः—आवश्यकदि शास्त्रोंमें मृतक साधुके पठ्या पीठें तीनशुईकी चैत्यवंदना कही है तिन शास्त्रोंका पाठ यह है ॥ चेइ धरु उवस्सए, वाहाइं ती तउ शुई तिन्नि ॥ सारवण व सहीए, करेए सबं व सहि पालो ॥ १ ॥ अविहि परिठवणा ए, काउस्सगो उ गुरु समीवंमि ॥ मंगल संति निमित्तं, अउ तउ अजिय संतीणं ॥ २ ॥ ते साहुणो चेइय धरे ता परिहायं तीहिं शुईहिं चेइयाणि वंदिउ आयरिय सगासे ॥

रियावहिंउं पडिकमिउं अविहि परिष्ठावणिया ए का  
उस्सग्गो कीरइता हे मंगल पड्डं तउ अन्ने विदो  
व ए हायंते कट्टंति उवस्सए वि एवं चेश्य वंदण  
ववइ ति ॥ कल्पचतुर्थोद्देशकसामान्यचूर्णो ॥ कल्प  
विशेष चूर्णि कल्पवृहद्भाष्यावश्यकवृत्तिकृद्भिरन्यथा  
व्याख्यातं । यद्युत चैत्यवंदनानंतरमजितशांतिस्तवो  
नएनीयो नो चेत्तदा तस्य स्थानेऽन्यदपि हीयमानं  
स्तुतित्रयं नएनीयमिति । तथाहि चेश्य घर गाहा  
। चेश्य घर गहंति चेश्याइं वंदित्ता संति ॥ निमित्तं अ  
ज्जियसंतिउउ परियट्ठिइ तिन्नि वाधुती उ परिहा  
यंती उ कट्ठिइंति तउ आगंतु आयरिय सगासे अवि  
हि पारिष्ठावणीयाए काउस्सग्गो कीरइ. कल्पविशेष  
चूर्ण उ०४ तथा चेश्य घरुवस्स एवा. आगम्मुस्सग्ग  
गुरुसमीवमि ॥ अविहि विगिंचणी याए, संति निमि  
त्तं थतो तड्ड ॥ १ ॥ परिहायमाणियाउ, तिन्नि शु  
ईउ हवति नियमेण ॥ अजियसंतिउगमा, श्याउक  
मसो तहिं नेउ ॥ २ ॥ कल्पवृहद्भाष्ये तथा उष्ठाणा  
ई दोसाउ, हवंति तड्डेव काउसग्गंमि आगम्मुवस्स  
यं गुरु सगासे अविहि ए उस्सग्गो कोइ नएव्हा त  
डेव किमिति काउसग्गो न कीरइ चन्नइ उष्ठाणाई दो

सा ह्वंति तत्र आगम्म चेइय धरं गहंति चेइयाणि  
 वंदित्ता संतिनिमित्तं अजिय संतिब्बयं पढंति तिन्नि  
 वा शुतीउ परिहायमाणीउ कट्टिबंति तत्र आगंतु आ  
 यरियसगासे अविहि विगिंचणियाए काउस्सग्गो की  
 रइ. इत्यावश्यकवृत्तौ ॥

अस्य जावा ॥ ते मृतक साधुके परिष्ठवनेवाले  
 साधु चैत्यधरमे प्रथम परिहायमान तीन शुइसें चै  
 त्यवंदना करके आचार्यके समीपें “ इरियावहियं ”  
 पडिक्कमिके अविधि पारिष्ठावणीयांका कायोत्सर्ग क  
 रे ॥मंगलपञ्च ६०॥ तद पीठे अन्यत् अपि दो हाय मा  
 न कहे, उपाश्रयमेंनी जैसेही करना परं चैत्यवंदना  
 न करणी यह कथन बृहत्कल्पके चतुर्थ उद्देशकी  
 चूर्णीमें है, और बृहत्कल्पकी विशेष चूर्णमें तथा  
 कल्पबृहद्भाष्यमें तथा आवश्यकवृत्तिकारें अन्यथा  
 व्याख्यान करा है, सो यह है ॥ चैत्यवंदनाके अनं  
 तर अजितशांतिस्तवन कहना जेकर अजितशांतिस्त  
 वन न कहे तो तिस अजितशांतिके स्थानमें अन्यत्  
 हायमान तीनशुइ कहनी, सोइ दिखाते है, ॥ चेइ  
 यधरगाहा ॥ चैत्यधरमें जावे तहां चैत्यवंदना कर  
 के शांतिके निमित्त अजितशांतिस्तवन कहना, अथ

वा तीन शुद्ध परिहायमान कहे तदपीठें आचार्य समीपें आकर अविधिपरिठावणियाका कायोत्सर्ग करना, यह कल्पविशेषचूर्णिके चतुर्थ उद्देशमें कहा है ॥

तथा चैत्यघर वा उपाश्रयमें आकर के गुरु समीपे अविधि परिठावणियांका कायोत्सर्ग करना और शांतिनिमित्त स्तोत्र कहना ॥१॥ परिहायमान तीन शुद्ध नियम करके होती है, अजितशांतिस्तवादिक क्रमसें तहां जानना ॥२॥ यह कथन कल्पवृहत् ज्ञाप्यमें है ॥

तथा कोऽ कहे तिहांही कायोत्सर्ग क्यों नहीं करते ? गुरु कहते हैं यहां उठानादि दोष होते हैं. तिसके लीये तहांसे आ कर चैत्यघरमें जावे, तहां चैत्यवंदना करके, शांतिनिमित्त अजितशांतिस्तवन पढे अथवा हायमान तीन शुद्ध कहे, तदपीठें आपने स्थानपर आ करके आचार्य समीपे अविधि परिठावणियांका कायोत्सर्ग करे ऐसा कथन आवश्यक वृत्तिमें करा है. इहां सामान्य चूर्णोंमें तीन शुद्धमें चैत्यवंदना मृतकसाधुके परठवनेवाले साधुओंको करनी कही है, सो मध्यम चैत्यवंदनाका मध्यमो लृष्ट तीसरा जेद है, अरु पूर्वोक्त नव जेदोंमें यह ठछ जेद है. सो तो एक आचार्यके मते मृतक परि



छव्यां पीठे करनी, हम मानतेही है. शेष लेख कल्पविशेष चूर्णि, कल्पवृहन्नाप्य, अरु आवश्यक वृत्तिमें जो है, तिसमें तो तीन शुद्धसे चैत्यवंदना करनी कहीही नहीं है. इस वास्ते जो कोइ इन पूर्वोक्त सूत्रोंका पाठ दिखलाय कर जोड़ें जीवोंकी प्रतिक्रमणके आद्यंतके चैत्यवंदनाकी चोथी शुद्ध बुडावे तो तिसकों निःसंदेह उत्सूत्र प्ररूपक कहना चाहियें; क्यों के? जो कोइ हाथीके दांत देखे चाहे तिसकों को इ गर्दजका शृंग दिखावे तो क्या बुद्ध बुद्धिमान गिना जाता है! इति कल्पसामान्यचूर्णि, कल्पविशेषचूर्णि कल्पवृहन्नाप्य अरु आवश्यकवृत्तिनिर्णयः ॥

पूर्वपक्ष—श्रीवंदनापश्नेमें तीन शुद्धसे चैत्यवंदना करनी कही है, सो तुम क्यों नहीं मानते हो?

उत्तरः—हे सौम्य ? जावनगर, १ घोघा, २ जामनगर ४ नींबडी, ५ पाटण, ६ राजधनपुर, ७ बडोदरा, ८ खंजात, ९ अहमदावाद, १० सूरत, ११ वीकानेर इत्यादि स्थानोंमें हमने अनुमानसे वीश ज्ञानजांदा रोंका पुस्तक देखे, परंतु वंदनापश्ना किसी जंमारमें हमकों देखनेमें नहीं आया, इस्से विचार उत्पन्न हू आके ऐसे बडे बडे पुरातन जंमारोंमेंसे कोइनी जं

मारमें यह पुस्तक हमारे हस्तगत न जया ? तो क्या यह वंदनापञ्चा श्रीजङ्वाहु स्वामीने रचा है ? किं वा जङ्वाहु स्वामीजीके नामसें किस तीन शुद्ध मानने वाले मतपद्धतीने रच दीया है ? जेकर श्रीजङ्वाहु स्वामीका रचा सिद्ध होवे तोनी इस पञ्चमेमें चौथी शुद्धका निषेध नहीं है, और जो इस पञ्चमेमें तीन शुद्धसें चैत्यवंदना करनी कही है, सो पूर्व कहे जा नव जेदोमेंसें ठछ मध्यमोत्कृष्टजेदकी तीन शुद्धसें चैत्यवंदना करनी कही है, यह चैत्यवदना श्रीजिनमं दिरमें करनी कही है परंतु प्रतिक्रमणकी आद्यंतमें चैत्य वंदना करनी नहीं कही है. इस वास्ते इसपञ्चमेसें जो तेरेको च्चांति होती है सो ढोड दे ॥ इति पञ्चा निर्णयः॥

पूर्वपङ्क्तः—देवसिप्रतिक्रमणकी आदिमें और राइ प्रतिक्रमणके अंतमें चैत्यवंदना करनी किसी शास्त्रमें नी नहीं कही है, तो फेर तुम क्यों करते हो ? ॥ १ ॥ और चौथी शुद्ध चैत्यवंदनामें करते हो, सो किस किस शास्त्रमें है ॥ २ ॥ अरु श्रुत देवताका कायोत्सर्ग किस किस शास्त्रमें करना कहा है ? ॥ ३ ॥

उत्तरपङ्क्तः—हम इन तीनों प्रश्नोका एक साथही उत्तर देते हैं ॥ श्रीप्रवचनसारोद्धार ॥ पडिक्कमणे चे

शहरे, जोयण समयंमि तद्वय संवरणे ॥ पडिक्रम  
 ए सुयण पडिवोह, कालियं सत्तहा जणो ॥ ए३ ॥  
 पडिक्रमउ गिह्णिणो विहु, सत्तविह पंचहाउ श्यरस्स ॥  
 होइ ऊहत्तेण पुणो, तीसुवि संजासु श्य ति विहं ॥ ए३ ॥  
 अत्रवृत्तिः ॥ साधूनां सप्तवारान् अहोरात्रमध्ये जव  
 ति चैत्यवंदनं गृहिणः श्रावकस्य पुनश्चैत्यवंदनं प्राकृ  
 तत्वाद्भुक्तप्रथमैकवचनान्तमेतत् । तिस्रः पंच सप्तवा  
 रा इति । तत्र साधूनामहोरात्रमध्ये कथं तत्सप्तवा  
 रा जवंतीत्याह पडिक्रमणेत्यादि । प्राजातिक प्रतिक्र  
 मणपर्यंते ततश्चैत्यगृहे तदनु जोजनसमये तथाचेति  
 समुच्चये जोजनानंतरंच संवरणे संवरणनिमित्तं प्र  
 त्याख्यानं हि पूर्वमेव चैत्यवंदने कृते विधीयते तथा  
 संध्यायां प्रतिक्रमण प्रारंभे तथा स्वापसमये तथा  
 निद्रा मोचनरूप प्रतिबोध कालिकंच सप्तधा चैत्यवंद  
 नं जवति यतेर्जातिनिर्देशादेकवचनं यतीनामित्यर्थः ।  
 गृहिणः कथं सप्तपंचतिस्रो वारांश्चैत्यवंदनमित्याह  
 पडिक्रमउइत्यादि । द्विसंध्यं प्रतिक्रामतो गृहस्थस्या  
 पि यतेरिव सप्तवेलं चैत्यवंदनं जवति । यः पुनः  
 प्रतिक्रमणं न विधत्ते तस्य पंचवेलं जघन्येन तिसृष्व  
 पि संध्यासु ॥

अस्य ज्ञापा ॥ साधुयोंकों एक अहोरात्रिमें सातवार चैत्यवंदना करनी और श्रावकोंकों तीनवार, पांचवार अरु सातवार करनी, तिसमें प्रथम साधुयोंकों एक अहोरात्रिमें सातवार चैत्यवंदना कि सतरेंसे होवे सो कहते हैं ॥ पडि० ॥ एक प्रजातके प्रतिक्रमणके पर्यंतमें, दूसरी तदपीठे श्रीजिनमंडिर में जाकर करनी, तदपीठे तीसरी नोजन समयमें, तदपीठे चौथी नोजन करके पीठे चैत्यवंदना करके प्रत्याख्यान करे. पांचमी संध्याके प्रतिक्रमणकी आदिमें प्रारंभमें, ठही रात्रिमें सोनेके समयमें, सातमी सूतां उठया पीठे करनी यह साधुयोंके चैत्यवंदन करनेका वखत कहा. और श्रावकतो जो उक्तकालमें प्रतिक्रमणा करता होवे सो तो साधुकी तरे सात वार चैत्यवंदना करे, अरु जो पडिक्रमणा न करे सो पांचवार चैत्यवंदना करे, और जघन्यसैं जघन्य तीनवार करे इस पाठमें पडिक्रमणकी आद्यंतमें चार युष्की चैत्यवंदना करनी कही है ॥ १ ॥ इसीतरे श्रीअजितदेवसूरि अर्थात् वादीदेवसूरिजिन का करा चौरासी सहस्र (८४०००) श्लोक प्रमाण स्याद्वाद रत्नाकर ग्रंथ है, तिनीकी करी यतिदिनच

र्यामैत्री यह चौशठमी गाथाका पाठ है ॥ पडिक्रम  
 णे चेइहरे, जोयणसमयंमि तहय संवरणे ॥ पडिक्रम  
 ण सूयण पडिवो ह, कालियंसत्तहा जइणो ॥ ६४ ॥  
 यह चौशठमी गाथाका अर्थ उपर वत् जानना ॥१॥  
 इसीतरेंका पाठ प्रतिक्रमणेकी आदिमें चारयुइसैं चैत्य  
 वंदन करणेका ३ धर्मसंग्रह, ४ वृंदारुवृत्ति, ५ आ-  
 विधि, ६ अर्थ दीपिका, ७ विधिप्रपा, ८ स्वरतर वृ  
 हत्समाचारी, ९ पूर्वाचार्यकृत समाचारी, १० तपग  
 ङ्गे श्रीसोमसुंदरसूरिकृत समाचारी, ११ तपगङ्गे श्री  
 देवसुंदरसूरिकृत समाचारी, तथा औरनी श्रीकालिका  
 चार्य सूरि संतानीय श्रीजावदेवसूरिविरचित यतिदि  
 नचर्यादि अनेक शास्त्रोंमें पडिक्रमणेकी आद्यंतमें चा  
 र युइसैं चैत्यवंदना करनी कही है. यह ग्रंथोंकों उ  
 व्दघन करकें रत्नविजयजी अरु घनविजयजी जो प  
 डिक्रमणेकी आद्यंतमें चार युइकी चैत्यवंदना निषेध  
 करते है, और तीन युइकी चैत्यवंदना करनेका उप  
 देश देतें है. यह इनका मत जैनमतके शास्त्रोंसे औ  
 र पूर्वाचार्योंकी समाचारीयोंसे विरुद्ध है. इसके वा  
 स्ते जैनधर्मी पुरुषोंकों इनकी श्रद्धा न माननी चाहि  
 यें. कदाचित् पूर्वकालमें अजाण पणोंसे माननेमें आ

ई होवे तो, वो तीन करण अरु तीन योगसँ वोसरा वणी चाहीयें, क्योंके ? एकतो जैनशास्त्र विरोधी, दूसरा पूर्वाचार्योंकी समाचारियोंका विरोधी, तीसरा चतुर्विध श्रीसंघका विरोधी यह विरोध करणेवाला कदापि संसार समुद्रसँ न तरेंगा ॥

पूर्वाचार्योंका विरोधी इसी तरें होता है, के एक श्रीहरिजिज्ञसूरि १४४४ ग्रंथके कर्ता, दूसरा श्रीनेमिचंद्रसूरि प्रवचनसारोद्धार ग्रंथका कर्ता, तीसरा श्रीसिद्धसेनसूरि प्रवचनसारोद्धारकी टीकाका कर्ता, चौथा श्रीवप्पनट्टसूरि आम राजाकों प्रतिबोध करणे वाला, तिनोने चौबीस तीर्थकरोंकी एकेक थुइके साथ तीनतीन थुइ दूसरी करी है. तिसमें एक सर्वजिनोकी, एक श्रुतज्ञानकी अरु एक शासनदेवताकी इसीतरें ठानवे एह थुइ करी है, जिनका जन्म विक्रम संवत् ७०१ की सालमें हुआ है. तथा दूसरा श्रीजिनेश्वरसूरिका शिष्य और नवांगी वृत्तिकार श्रीअजयदेवसूरिका गुरुजाइ तिसने शोचनस्तुतिमें चौबीसजिनके संबंधसँ चौबीस चोकडे ठानवे थुइ करी है इस्से श्रीअजयदेवसूरिजी नवांगी वृत्तिकारक और तिनके गुरु श्रीजिनेश्वरसूरि प्रमुख गुरुपरंपरायसँ सर्व चार थुइ मानतेथे.

जेकर चौथी शुद्ध पूर्वोक्त पुरुषो नहीं मानतेथे ऐसा कहेगे तो तिनके शिष्य और गुरु जाई किस वास्ते चौथीशुद्धकी रचना करते ? तथा उत्तराध्ययनसूत्रकी वृत्तिकारक श्रीशांतिस्वरिजीने संघाचारचैत्यवंदन महाज्ञाप्यमें चार शुद्ध कही है; तथा श्रीजगच्चंद्रस्वरि क्रियाउद्धारका कर्ता, तपस्वी, महाप्रजाविक, राणा की सजामें तेतीस ३३ रूपणकाचार्योंको वादमें जी त्या, तपाबिरुद्ध धारक तिनका शिष्य परमसंवेगी, ज्ञानज्ञास्कर, श्रीदेवेंद्रस्वरिजीने लघुज्ञाप्यमें चारशुद्ध कही है. तथा श्रीबृहद्गणैकमंदन श्रीमुनिचंद्रस्वरिजी और तिनका शिष्य श्रीवादी देवस्वरिजीने ललितविस्तरांकी पंजिका और यतिदिनचर्यामें चार शुद्ध कथन करी है, तथा नवांगी वृत्तिकार श्रीअजयदेवस्वरिजी के शिष्य श्रीजिनवद्वजस्वरिजीने समाचारीमें चार शुद्ध कथन करी है, तथा कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्रस्वरिजीने योगशास्त्रमें चार शुद्ध कथन करी है, तथा श्रीधर्मघोषस्वरिजीने संघाचारवृत्तिमें चार शुद्ध कथन करी है, तथा श्रीकुलमंदनस्वरिजी तथा श्रीसोमसुंदरस्वरि तथा देवसुंदरस्वरि तथा नरेश्वरस्वरि तथा श्रीनावदेवस्वरि तथा तिलकाचार्य तथा श्रीजिनप्रजस्वरिजी

फुरोज वादशाहका प्रतिबोधनेवाला तथा श्रीजयचन्द्र सूरिजी इनोने क्रमसे विचारामृतसंग्रहमें अपनी अपनी रची तीन समाचारीयोंमें, यतिदिनचर्यामें, समाचारीस्वकीयमें, विधिप्रपामें, प्रतिक्रमणा गर्जित हेतु ग्रंथमें, चैत्यवंदनामें चार चार थुई कहनी कथन करी है. तथा श्रीमानविजय उपाध्यायजीने तथा श्रीमत्पंशो विजय उपाध्यायजीने तथा श्रीनमि नामा साधुने तथा तरुणप्रज्ञसूरिजीने क्रमसे धर्मसंग्रहमें, प्रति क्रमणाहेतुगर्जितमें, पडावञ्चकमें, पडावञ्चक वाला ववोधमें, चार थुई कहनी कही है, इत्यादि दूसरेकी अनेक आचार्योंने चार थुई कहनी कही है, इन सर्व आचार्योंकी गुरुपरंपरा और शिष्यपरंपरासे हजारों आचार्योंने चारथुई मान्य करी है. इस वास्ते हमको बड़ा शोक उत्पन्न होताहै के श्रीजिनशास्त्रोंके और हजारों आचार्योंके और श्रीसंघके विरुद्ध पंथ चलाने वाले रत्नविजयजी और धनविजयजी इनका क्योंकर कल्याण होवेगा ! और इनोंका कहना मानने वाले जोले श्रवकोंकीजी क्या दगा होवेगी ?

अथाग्रे कितनेक पूर्वोक्त ग्रंथोंका पाठ लिखते है. जिसके वांचनेसे नव्यजीवोंको मालुम हो जावे के, र



तत्रविजयजी अरु धनविजयजी जो चौथी युष्का निषेध करते है, सो बडा अन्याय करते है !

प्रथम ललितविस्तरा ग्रंथका पाठ लिखते है ॥  
 वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मद्दिष्ठि समाहिगराणं  
 करेमि काउस्सग्ग मित्यादि यावद्दोसिरामि व्याख्या  
 पूर्ववत् नवरं वैयावृत्त्य कराणां प्रवचनार्थे व्यापृतत्ता  
 वानां यद्दाम्भ्रकूष्मांसादीनां शांतिकराणां दुष्पोपद्द्वेषु  
 सम्यग्दृष्टीनां सामान्येनान्येषां समाधिकराणां स्वपर  
 योस्तेषामेव स्वरूपमेतदेवैषामिति वृद्धसंप्रदायः । ए  
 तेषां संबन्धिनं । सप्तम्यर्थे षष्ठी । एतद्विषयं एतानाश्रि  
 त्य करोमि कायोत्सर्गं । कायोत्सर्गविस्तरः पूर्ववत् ।  
 स्तुतिश्च नवरमेषां वैयावृत्त्यकराणां तथा तद्भाववृद्धेरि  
 त्युक्तप्रायं तदपरिज्ञानेप्यस्मात्तद्बुद्धिसिद्धाविदमेव व  
 चनं ज्ञापकं नचासिद्धमेतदामिचारुकादौ तथेक्षणात्  
 तदौचित्य प्रवृत्त्या सर्वत्र प्रवर्तितव्यमित्यैदं पर्यमस्य  
 तदेतत्सकल योगबीजं वंदनादिप्रत्ययमित्यादि न प  
 व्यते अपित्वन्यत्रोद्बुद्धिसितेनेत्यादि तेषामविरतत्वात्  
 सामान्यप्रवृत्तेरिद्धमेवोपकारदर्शनात् वचनप्रामाण्या  
 दिति व्याख्यातं सिद्धेन्य इत्यादिसूत्रम् ॥

अस्य जावार्थः—जिनशासनकी उन्नति करनेमें व्या

पारवाले हैं, और कुडोपड्वमें सम्यक्दृष्टियोंकों शांति के करनेवाले और समाधिके करनेवाले ऐसा जो कूष्माण्ड, आम्नादि यद् इनकों आश्रित्य होके कायोत्सर्ग करता हूं, कायोत्सर्ग करके तिन शासनके रक्षक देवतायोंकी शुई कहनी. इत्यादिक कहनेसें श्री हरिचंद्रसूरिजीने चौथी शुईका कहना आवश्यकमें कहा है. इसका जो निषेध करे सो जैनशासनमें नहीं है ऐसा जाननां ॥

तथा श्रीप्रवचनसारोद्धारमें श्रीनेमिचंद्रसूरिजीनें ऐसा पाठ कहा है ॥ पढमं नमोबु १, जेअई या सिद्धा २, अरिहंत चेइयाणं ३, ति लोगस्स ४, सबलोए ५, पुक्कर ६, तमतिमिर ७, सिद्धाणं ८ ॥ ८८ ॥ जो देवाणवि ९, उज्जात सेल १०, चत्तारिअच्छदसदोय ११, वेयावच्चगराणय १२, अहिगारुद्धिंणण पयाइं ॥ ८९ ॥ इस पाठके वारमें अधिकारमें शासन देवताका कायोत्सर्ग और चौथी शुई कहनी कही है ॥२॥ इसकी टोकामें सिद्धसेनाचार्ये चार शुइसें चैत्यवन्दना करनी कही है तथाचतत्पाठः ॥ समयजापया स्तुति चतुष्टयं ॥ तिनसे जो चैत्यवन्दना सो मध्यम चैत्यवन्दना जाननी ॥ ३ ॥

तथा श्रीउत्तराध्ययनकी बृहद्वृत्तिकार श्रीशांति  
 सूरिजीने संघाचार चैत्यवंदना महान्नाप्यमें चौथी शु  
 ङ्का पूर्वपङ्क उत्तरपङ्क करके अन्ही तरेमें स्थापन क  
 रा है. सो नाप्यका पाठ यहां लिखते है ॥ वेयावञ्चगरा  
 णं संतिगराणं सम्मद्विधि स० ॥ अन्नहृत्क० ॥ वेयाव  
 चञ्जिणगिह, रक्कण परिष्ठवणाऽ जिणकिञ्च ॥ संतीपड  
 णीयकउ, उवसग्गविनिवारणं नवणे ॥ ७६ ॥ सम्मद्वि  
 ठी संघो, तस्स समाहमणो इहान्नावो ॥ एएसिकर  
 णसीजा, सुरवरसाहम्मिया जे उ ॥ ॥ ७७ ॥ तेसिं  
 समाणहं, काउस्सग्गं करेमि एत्ताहे ॥ अन्नहूससि  
 याई, पुवत्तागार करणेणं ॥ ७८ ॥ एहउ नणेव कोई,  
 अविरइगंधाणताणमुस्सग्गो ॥ नहु संगहइ अम्हं, सा  
 वयसमणेहिं कीरत्तो ॥ ७९ ॥ गुणहीणवंदणं खडु,  
 न हु ज्जुत्तं सब्बेसविरयाणं ॥ नणइ गुरु सच्चमिणं,  
 एत्तो चियएह नहि नणियं ॥ ८० ॥ वंदण पूयण  
 सक्का, रणाइ हेउं करेमि काउस्सग्गं ॥ वहलं पुणज्जुत्तं,  
 जिणमयज्जुत्ते तणुगुणेवि ॥ ८१ ॥ ते हुपमत्ता पायं,  
 काउस्सग्गेण बोहिया धणियं ॥ पडिउच्चमंति फुड,  
 पाडिहेर करणे दडुवाह ॥ ८२ ॥ सुच्चइ सिरिकंताए,  
 मणोरमाए तहा सुज्जदाए ॥ अजयाइणं पि कयं, स

त्रेवं सासणसुरेहिं ॥ ७३ ॥ संघस्सगा पायं, वड्डुं  
 सामञ्जमिह सुराणंपि ॥ जहसीमंधरमूले, गमणे मा  
 हिलवि वायंमि ॥ ७४ ॥ जस्का एवा सुञ्चइ, सीमंधर  
 सामिपायमूलंमि ॥ नयणं देवी एकयं, काउस्सग्गे  
 ण सेसाणं ॥ ७५ ॥ एमाहिं कारणेहिं, साहम्मिय  
 सुरवराण वञ्छं ॥ पुव्वपुरिसेहिं कीरइ, न वंदणाहेउ  
 मुस्सुग्गे ॥ ७६ ॥ पुव्वपुरिसाणमग्गे, वञ्चंनो नेय चु  
 क्कइ सुमग्गा ॥ पाउणइ जावसुद्धि, सुञ्चइ मिढ्ठा  
 विगप्पेहिं ॥ ७७ ॥

इनकी जापा लिखते हैं ॥ वैयावृत्य कहियें जि  
 नमंदिरकी रक्षा करनी, परिस्थापनादि जिनमतका  
 कार्य करनां, शांति सो जिनजवनमें प्रत्यनीकके करे  
 दूए उपसर्गोंका निवारण करना ॥ ७६ ॥ सम्यक्दृ  
 ष्टि श्रीसंघ तिसकों दो प्रकारकी समाधिके करनेवा  
 ले ऐसा शील कहते स्वजाव है जिन साधर्मी देवता  
 योंका ॥ ७७ ॥ तिनकूं सन्मान देनेके वास्ते अन्न  
 उउससियाए आदि आगार करनेसें अवमें कायोत्सर्ग  
 करता हूं ॥ ७८ ॥ इहांकोइ कहे के अचिरति देवतायोंका  
 कायोत्सर्ग करना यह हम श्रावक और साधुयोंकों ती  
 क संगत नहीं है ॥ ७९ ॥ क्यों के गुणहीनकूं वंद

ना करनी यह सर्वविरति अरु देशविरतिकूं युक्त न ही है. अब इसका उत्तर गुरु कहते है. हे नव्य तेरा कहना सत्य है इसवास्तेही इहां नही कहा ॥७०॥ वंदण पूयण सकार हेतु वास्तेमें कायोत्सर्ग करता हूं. ऐसा नही कहा; परंतु साधर्मी वत्सल तो जैन मतमें अल्पगुणवालेके साथजी करना इसवास्ते यह जो शासन देवतायोंका कायोत्सर्ग करना है सो बहुमान देणे रूप साधर्मी वत्सल है ॥ ७१ ॥ क्यों के यह शासन देवता प्रायें प्रमादी है, इसवास्ते कायोत्सर्गद्वारा जाग्रत करेहूए शासनकी उन्नति करनेमें उत्साह धारण करते है ॥ ७२ ॥ शास्त्रोंमें सुनते है के सिरिकंता, मनोरमा, सुजडा अरु अजयकुमारादिकोंको शासनदेवतायोंने साह्य करा ॥ ७३ ॥ श्रीसंघके कायोत्सर्ग करनेसें गोष्ठामाहिद्वके विवादमें शासनदेवता सीमंधरस्वामिके पास गये, वहां जाकर सत्यका निर्णय करा ॥ ७४ ॥ शेष संघके कायोत्सर्ग करनेसें यद्वा साध्वीकों शासन देवी सीमंधरस्वामीके पास लेगइ ॥ ७५ ॥ इत्यादिक कारणो करके चैत्यवंदनामें देवतायोंके साथ साधर्मी वञ्चलरूप कायोत्सर्ग पूर्वाचार्योंने करा है परंतु देवतायोंको

वंदना वास्ते नहीं करा है ॥७६॥ इसवास्ते पूर्वाचार्योंके मार्गमें चलनेसें जले मार्गसें कदापि पुरुष चष्ट नहीं होता है, परंतु पूर्वाचार्योंके चलेदूए मार्गमें चलनेसे अनेक मिथ्या विकल्पोंसे बूटके पुरुष जाव शुद्धिकों प्राप्त होता है इस वास्ते पूर्वाचार्योंका चलाया शासनदेवतायोंका कायोत्सर्ग नित्य चैत्यवंदनामें करना ॥ ७४ ॥ पास्त्रिक काउत्सर्गो, परमेष्ठीणं च कयनमोक्कारो ॥ वेयावच्चगराणं, देव्युश्च जकपमुहाणं ॥ ७७ ॥ व्याख्याः—कायोत्सर्गं पारकें, परमेष्ठीकों नमस्कार करकें, वेयावृत्तके करनेवाले शासन देवतायोंकी शुश्च कहे ॥ ७७ ॥

ऐसा प्रगट जाप्यका पाठ देखके जो कोइ चौथी शुश्चका निषेध करे तिसकों जैनमतकी श्रद्धा रहितके सिवाय अन्य कौनसें शब्द करके बुलाना ?

ऐसे ऐसे बडे बडे महान् शास्त्रोंके प्रगट पाठ है तोजी रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों देखनेमें नहीं आते है सो कर्मकी विपमगतिही हेतु है अब दूसरा क्या कहनां ? ॥

तथा चौरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वाद रत्नाकर ग्रंथका कर्ता सुविहित देवसूरिजीकी करी यति

दिनचर्याका पाठ यद्वा लिखते हैं ॥ नवकारेण जहन्ना,  
दंमगद्युञ्जुअलमधिमा नेत्र्या ॥ उक्कोसा विहिपुव्वग्ग,  
सक्कळय पंचनिम्माया ॥ ६५ ॥ व्याख्याः—नमस्कारेणां  
जलिवंधेन शिरोनमनादिरूपप्रणाममात्रेण यद्वा न  
मो अरिहंताणमित्यादिना वा एकेन श्लोकादिरूपेण  
नमस्कारेणेति जातिनिर्देशाद्बहुनिरपि नमस्कारेण  
प्रणिपातापरनामतया प्रणिपातदंमकेनैकेन मध्या म  
ध्यमा दंमकश्च अरिहंत चेश्याणमित्याद्येकस्तुतिश्चैका  
प्रतीता तदंते एव या दीयते ते एव युगलं यस्याः  
सा दंमकस्तुति युगला चैत्यवंदना नमस्कार कथना  
नंतरं शक्रस्तवोप्यादौ जण्यते वादंमयोः शक्रस्तवचैत्य  
स्तवरूपयोर्युगं स्तुत्योश्च युगं यत्र सा दंमस्तुतियु  
गला इहवैका स्तुतिश्चैत्यवंदन दंमककायोत्सर्गानंतरं  
श्लोकादिरूपतयाऽन्यान्य जिनचैत्यविषय तथाऽधुवा  
त्मिका तदनंतरं चान्या ध्रुवा लोगस्सु ज्जोअगरे इत्यादि  
नामस्तुतिसमुच्चाररूपा वा दंमकाः पंच शक्रस्तवादयः  
स्तुति युगलं च समय जाषया स्तुतिचतुष्कमुच्यते  
यत आद्यास्तिस्त्रोऽपि स्तुतयो वंदनादि रूपत्वादेका  
गण्यंते चतुर्थीस्तुतिरनुशास्तिरूपत्वाद्द्वितीयोच्यते त  
था पंचनिर्दंमकैः स्तुतिचतुष्केण शक्रस्तवपंचकेन

प्रणिधानेन चोत्कृष्टा चैत्यवदनेति गार्थार्थः ॥ इत्थं  
 पाठमें चार शुद्धं चैत्यवन्दना करनी कही है तथा  
 फेर इसी यतिदिनचर्यामें प्रतिक्रमण करनेका विधीमें  
 गाथा जिणवन्दणमुणिनमणं, सामाञ्च पुत्रकावस  
 गोञ्च ॥ देवसिञ्चं अञ्चरं, अणुकम्मसो इच्चित्तेजा  
 ॥ १९ ॥ जिनवन्दनं करोति चैत्यवदनं कृत्वा देववदनं  
 करोति देववन्दनं कृत्वा गुरुवन्दनं करोति यथा जगव  
 न्नहमित्यादि ॥ इत्थं पाठमें प्रतिक्रमणके प्रारम्भमें चार  
 शुद्धं चैत्यवन्दना करनी कही है ॥ तथा फेर इसी  
 दिनचर्यामें ॥ चरणे १ दंसण २ नाणे ३ उज्जाञ्च  
 डन्नि १ इक्क ३ इक्कोञ्च ३ ॥ सुञ्च खित्त देवयाए, शुद्ध  
 अन्ते पंचमंगलयं ॥ ३७ ॥ व्याख्या तदनु चारित्रविधि  
 शुद्धयर्थं कायोत्सर्गः कार्यः तत्रोद्योतकरद्वयं चिन्तनीयं  
 १ दंसणनाणेत्यादि ॥ ततो दर्शनशुद्धिनिमित्तमुत्सर्गस्त  
 त्रैकोद्योतकरचिन्तनं ॥ २ ॥ तदनु ज्ञानशुद्धिनिमित्तमु  
 त्सर्गस्तत्राप्येकोद्योतकरचिन्तनं ॥ ३ ॥ सुञ्चदेवय खित्त  
 देवया एत्ति ॥ तदनु श्रुत समृद्धि निमित्तं श्रुतदेव  
 तायाः कायोत्सर्गमेकनमस्कारचिन्तनं च कृत्वा त  
 दीयां स्तुतिं ददाति अन्येन दीयमानां शृणोति वा  
 ततः सर्वविघ्ननिर्दलननिमित्तं क्षेत्र देवतायाः कायो



त्सर्गः कार्यः एक नमस्कारचिंतनं कृत्वा तदीयां स्तुतिं ददाति परेण दीयमानां वा शृणोति स्तुत्यंते पंचमंगलं नमस्कारमभिधायोपविशतीति गार्थार्थः ॥३७॥

इस पाठमें श्रुतदेवताका और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करना कहा है, और इन दोनोंकी युद्ध कहनी कही है श्रीदेवसूरिजी जिनोंने सिद्धराज जयसिंहकी सनामें कुमुदचंद्र दिगंबरकूं जीत्या जिनके आगे साठे तीनकोडी ग्रंथका कर्ता श्रीहेमचंद्रसूरि बालक पुत्रकी तरें बैठे थे. और जिन श्रीदेवसूरिजीने चौरासी हजार श्लोकप्रमाण स्याद्वादरत्नाकर ग्रंथ रचा था तिनके शिष्य श्रीरत्नप्रज्ञसूरिजीने रत्नाकरावतारिका लघुवृत्ति रची, जिनके वचनोको जैनमतमें कोष्ठी विद्वान् अप्रमाणिक नही कही शक्ता है, और यह श्रीदेवसूरिजीके गुरु श्रीमुनिचंद्रसूरि थे तिने जावज्जीव आचाम्ल तप करा है, जिनोकी रची योगबिंदु, धर्मबिंदु, उपदेशपद प्रमुख अनेक ग्रंथोकी टीका है, तिने ललितविस्तराकी पंजिकामें चार युद्धमें चैत्यवंदना करनी कही है, जैसे महान्पुरुषोके कथन करेकी जेकर रत्नविजयजी और धनविजयजीकूं प्रतीति नही तो इन स्तोक मात्र यद्वा तद्वा पठन करे हुए रत्न

विजयजी धनविजयजीके कहनेकूं कौन बुद्धिमान सत्य मानेगा. क्योंकि रत्नविजय अरु धनविजयजीकूं समजावने वास्ते जेकर महाविदेह क्षेत्रसैं केवलीजगवान् आवे अैसा तो संभव नहीं है परंतु पूर्वाचार्योंके वचन ऊपर प्रतीति रखनी चाहियें सो तो इन दोनोकों नहीं है तब इनका मत सम्यक्दृष्टी पुरुषतो कोझी नहीं मानेगा.

तथा श्रीअणहिल्लपुर पाटण नगरें फोफलवाडा जामागारे प्राचीनाचार्य्यकृत सामाचार्य्याका पुस्तक है, तिनका पाठ यहां लिखते हैं ॥

जिणमुणिवंदण अश्वा, रुस्सग्गो पुत्तिवंदणालोए ॥ सुत्तेवंदण खामण, वदण चरणाऽ उस्सग्गो ॥ ४ ॥ उद्धोअडुक्किक्का, सुअखिवस्सग्ग पुत्ति वंदणए ॥ थुअ तिअ नमुब्बत्तं, पत्ति तुस्सग्गु सज्जाउ ॥ ५ ॥ पुनरपि अणहिल्लपुरपट्टननगरे फोफलवाडा जामागारे कालिकाचार्य संतानीय जावदेवसूरि विरचित्त यत्तिदि नचर्यायां अय देवसिक प्रतिक्रमणस्य स्वरूपं निरूपयति ॥ चेअ्य वंदणजयवं, सूरि उवप्लाय मुणि खमासमणा ॥ सव्वसवि सामाअय देवसिय अईयार उस्सग्गो ॥ ३४ ॥ व्याख्या—तत्रादौ चैत्यवदनं अरिहंत चेअ

याणमित्यादि पश्चाच्चत्वारि ऋमाश्रमणानि 'जगवान्  
सूरि उपाध्याय मुनि' इत्यादिरूपाणि । पुनरपि तत्रैव  
चैत्यवंदनाः कियंत्य इत्याशंक्याह ॥ पम्कमणे चेइह  
रे, नोयणसमयंमि तहय संवरणे ॥ पम्कमण सुय  
ण पम्बो, ह्कालियं सत्तह जइणो ॥ ६३ ॥ व्याख्या  
॥ साधोः प्रथमा चैत्यवंदना प्रतिक्रमणे रात्रिप्रतिक्र  
मणे ॥ १ ॥ द्वितीया चैत्यगृहे जिनजवने ॥ २ ॥ तृती  
या नोजनसमये आहारवेलायां ॥ ३ ॥ चतुर्थी संवर  
णे कृतनोजनः साधुः सततं चैत्यवंदनां करोति ॥ ४ ॥  
तथा पंचमी प्रतिक्रमणे दैवसिकप्रतिक्रमणे ॥ ५ ॥  
षष्ठी शयने संस्तारककरणसमये ॥ ६ ॥ सप्तमी प्रति  
बोधकाले निडापरित्यागे ॥ ७ ॥ एताः सप्त चैत्यवंद  
नाः यतिनो ज्ञातव्याः, यदाहुः साहूण सत्तवारा, हो  
इ अहोरत्तमप्लयारंमि ॥ गिहिणो पुणचियवंदण, ति  
यपंचसत्तवावारा ॥ १ ॥ पम्कमउ गिहिणो वि हु,  
सत्तविहं पंचहा उ इयरस्स ॥ होइ जहन्नेण पुणो, ती  
सु विसंजासु इय तिविहं ॥ २ ॥ ६३ ॥ अथ तस्याश्चैत्य  
वंदनाया जघन्यादयः कियंतो चेदा इत्याशंक्याह ॥  
नवकारेण जहन्ना, दंमग शुइ जुयल मप्पिमा नेया ॥  
उक्कोस विहिपुव्वग, सक्कळय पंचनिम्माया ॥ ६४ ॥ व्या

ख्या ॥ नमस्कारः प्रणामस्तेन जयन्या चैत्यवंदना स  
 नमस्कारः पंचधा एकांगः शिरसो नमने, द्व्यंगः करयो  
 र्द्वयोः, त्र्यंगः त्रयाणां नमने करयोः शिरसस्तथा ॥ १ ॥  
 च पुनः करयोर्जान्वोः नमने चतुरंगकः, शिरसः करयो  
 र्जान्वोः पंचांगः पंचमो मतः ॥ २ ॥ यद्वा श्लोकादिरू  
 पनमस्कारादिर्जिर्जघन्या ॥ १ ॥ अतो मध्यमा द्वि  
 तीया सा तु स्थापनार्हत्सूत्रदंमकैस्तुतिरूपेण युगले  
 न जवति अन्ये तु दंमकानां शक्रस्तवादीनां पंचकं त  
 था स्तुतियुगलं समया जापया स्तुतिचतुष्टयं तान्यां  
 या वंदना तामाहुः । यद्वा दंडकः शक्रस्तवः स्तुत्योर्युगलं  
 अरिहंतचेष्ट्याणं स्तुतिश्चेति ॥ यत आवश्यकचूर्णौ  
 स्थापनार्हत्स्तवचतुर्विंशतिस्तवश्रुतस्तवाः स्तुतयः प्रो  
 क्ताः एते मध्यम चैत्यवंदनाया जेदा उत्कृष्टा वि  
 धिपूर्वकशक्रस्तवपंचनिर्मिताः । तथा उत्कृष्टा तु श  
 क्रस्तवादिपंचदंडकनिर्मिताः जयवीरायेत्यादिप्रणिधा  
 नान्ता चैत्यवंदना स्यात्, अन्ये तु शक्रस्तवपंचकयु  
 तामाहुः । तत्र वारह्यं चैत्यवंदनाप्रवेशत्रयं निष्क्रमण  
 द्वयं चेति पंचशक्रस्तवी ॥ ६४ ॥

उसी रीतीसे पाटणनगरके फोफलियावाडाके नं  
 मारमें पूर्वाचार्यकृत समाचारी और यतिदिनचर्चा

में प्रतिक्रमणकी आदिमें चार शुद्धों चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा कहा है और श्रीजावदेवसूरिजीने यति दिनचर्यामें प्रतिक्रमणमें चार शुद्धी चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग और शुद्ध कहनी कही है तथा चैत्यवंदनाके मध्यमोत्कृष्ट जेदमेंजी चार शुद्धों चैत्यवंदना करनी कही है ॥

तथा पंचवस्तु ग्रंथमें इस मुजब पाठ है सो लिखते है ॥ शुद्ध मंगलंमि गुरुणा, उच्चरिए सेसे १ स गा शुद्ध विंति ॥ चिंति ततथेवं, कालं गुरु पाय मूलमि ॥९०॥ व्याख्या ॥ स्तुतिमंगले गुरुणा आचार्येण उच्चारिते सति ततः शेषाः साधवः स्तुतीर्ब्रुवते ददतीत्यर्थः । तिष्ठति ततः प्रतिक्रान्तानंतरं स्तोकं कालं केत्याह गुरुपादमूले आचार्यातिके इति गाथार्थः । प्रयोजनमाह । पम्हे षमे रसायणजं उप्फेडिजं हवइ एवं ॥ आयरणासु अ देवय, माइणं होइ उस्सग्गो ॥९१॥ तत्र विस्मृतं स्मरणं जवति विनयश्च फटितो नामतीतो जवत्येव उपकार्यासेवनेन एतावत्प्रतिक्रमणं आचरणात् श्रुतदेवतादीनां जवति कायोत्सर्गः । अत्र आदि

शब्दात् क्षेत्रजननदेवतापरिग्रहः । इति गार्थार्थः ॥

इस प्रकारें श्रीहरिजडसूरिजीने पंचवस्तु शास्त्रमें आचरणासें श्रुतदेवता और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करना कहा है, तो यह श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्गकरण रूप आचरणा पूर्वधारियों के समयमेंनी चलती थी तिसका स्वरूप विचारामृत संग्रह ग्रंथकी साक्षीसें उपर लिख आये हैं, तो पूर्वधारियोंकी आचरणाका निषेध करना यह महा अनर्थका मूल है, निषेध करनेवाले रत्नविजयादि ऐसे नही सोचते होवेगे के, हम तुल्लुबुद्धिवाले होकर पूर्वधारियोंकी आचरणाका निषेध करके कौनसी गतिमें जावेगे !!

तथा श्रीवृंदासुवृत्तिका पाठ लिखते हैं एवमेतत्पठित्वोपचितपुण्यसंज्ञार उचितेष्वौचित्यप्रवृत्त्यर्थमिदमाह वेयावञ्जगराणमित्यादि । वैयावृत्त्यकराणां प्रवचनार्थं व्याप्ततन्नावानां गोमुखयक्षादीनां शांतिकराणां सर्वलोकस्य सम्यग्दृष्टिविषये समाधिकराणां एषां संबन्धिना पष्ठया सप्तम्यर्थत्वादेतद्विषयं वा आश्रित्य करोमि ॥ कायोत्सर्गं अत्र वंदणवक्त्याए इत्यादि न पठ्यते तेषामविरतत्वात् अन्यत्रोद्धृतिसितेनेत्यादि पूर्वव

त् । ततः एषां स्तुतिं जगित्वा प्रागुक्तवृत्तस्तवं च ॥  
 प्रतिक्रमणविधिश्च योगशास्त्रवृत्त्यंतर्गतान्यः चिरंतना  
 चार्यप्रणीतान्यो गाथान्योऽवसैयः । पंच विहायार  
 विसु, द्विहेउमिह साहु सावगो वावि ॥ पडिक्कमणं स  
 ह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्को वि ॥ १ ॥ वंदित्तु  
 चेश्याइं, दाउं चउराइए खमासमणे ॥ नूमिनिहिअ  
 सिरो सयलाइअर मिहोक्कडं देई ॥ २ ॥ सामाइय  
 पुवमिह्वा, मि ठाइउं काउसग्गमिच्चाइ ॥ सुत्तं जणि  
 अ परंविअ, नूअकुप्पर धरि अ पहिरणउ ॥ ३ ॥  
 घोडगमाई दोसेहिं, विरहियंतो करेइ उस्सग्गं ॥  
 नाहि अहो जाएह्णं, चउरंगुलठइअ कडिपट्टो ॥ ४ ॥  
 तहयधरेई हिअए, जहक्कमं दिणकए अईअरारे ॥ पारे  
 तु एमोक्कारे, ए पडइ चउवीसथयं दंमं ॥ ५ ॥ संमास  
 गे पमज्जिअ, उवविसिअ अलगाविअयबाहुजुउ ॥  
 मुहणं तगं च कायं, च पेहए पंचवीसइहा ॥ ६ ॥  
 उठिअठिउंसविणयं, विहिणा गुरुणो करेइ किइक्कम्मं ॥  
 बत्तीस दोसरहिअं, पएवीसावस्सगविसुद्धं ॥ ७ ॥ अह  
 संमम वणयंगो, करजुअ विहिधरिअ पुत्तिरयहरणो ॥  
 परिचिंतईअइअर, जहक्कम्मं गुरुपुरोविअडे ॥ ८ ॥  
 अहउव विसित्तु सुत्तं, सामाइय माइअं पठिअ पयउ ॥

अङ्गुलिन्दि श्चाई, पढई इहउठिठ विहिणा ॥ ए ॥  
 दाऊण वंदणं तो, पणगाई सुजइ सुखा मए तिस्सि ॥ किइ  
 कम्मं करिअ आ, यरिअमाईगाहातिगं पढए ॥ १० ॥  
 इअ सामाइअ उस्स, ग सुत्तमुच्चरिअ काउस्सगगच्छिउ ॥  
 चिंतइ उज्जाअङ्गं, चरित्त अइअारे सुद्धिकए ॥ ११ ॥  
 विहिणा पारिअ संम, त सुद्धिहेउं च पढइ उज्जाअं ॥  
 तह सबलोअ अरहं, त चेइअाराहणुस्सगगं ॥ १२ ॥  
 काउं उज्जाअगरं, चिंतिअपारेइ सुद्ध सम्मत्तो ॥ पुकर  
 वरदीवडुं, कट्टइ सुहण निमित्तं ॥ १३ ॥ पुणपणवी  
 सुस्सासं, उस्सगगं कुणइ पारण विहिणा ॥ तो स  
 यल कुशल किरिआ, फलाणसिद्धाण पढइ थयं ॥ १४ ॥  
 अहसुअ समिद्धि हेउ, सुअदेवीए करेइ उस्सगगं ॥  
 चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ व देइ व तीइ थुई ॥ १५ ॥ एवं खेत्त  
 सुरीए, उसगगं कुणइ सुणइ देइ थुइ ॥ पडिऊण पंच  
 मंगल, सुवविसई पमज्जसंमासे ॥ १६ ॥ पुवविहिणे  
 वपेहिअ, पुत्तिं दाऊण वंदण गुरुणो ॥ इत्थामो अ  
 णुसत्तिं, तिजणिअजाण्णहिं तो ठाई ॥ १७ ॥ गुरुथुइ  
 गहणे थुइतिस्सि वद्धमाण स्करस्सरा पढई ॥ सक्कळ  
 वयवं पढि, अ कुणइ पयित्तञ्च स्सगं ॥ १८ ॥

जापा यह वृंदारुवृत्ति श्रावकके आवड्यककी टी



का है तिसके अंतरगत चैत्यवंदनाविधि है. तिसमें चार शुद्धसे चैत्यवंदना करनी लिखी है. तिसमें चौथी शुद्धके वास्ते ऐसा पूर्वोक्त पाठ लिखा है. तिसका अर्थ कहते हैं. जैसे कहके पुण्यके समूह करके उपचित होया हुआ उचितों विषे उचित प्रवृत्तिके अर्थे ऐसे कहे “वैयावच्च” वैयावच्चके करणहार, जिनशासनकों साहाय्यकारी गोमुख यक्षादिक सर्वलोककों शांति करनेवाले, सम्यक्दृष्टियोंकों समाधि करणहारे, इन संबंधि इनकों आश्रित्य होके कायोत्सर्ग करता हूं. इहां वंदणवत्तिआए इत्यादि पाठ न कहना, तिनके अविरत होनेसे अन्यत्रोच्चसितेनेत्यादि पूर्ववत् कहना ॥

तथा कलिकाल सर्वज्ञ विरुद्ध धारक साडेतीन कोटी ग्रंथका कर्त्ता जैसे श्रीहेमचंद्रसूरिजीने योगशास्त्रमें चिरंतन पूर्वाचार्योंकी रचित गाथा करके प्रतिक्रमणका विधि लिखा है. तिसमें दैवसिकप्रतिक्रमणकी आदिमें चैत्यवंदना चार शुद्धसे करनी कही है, तथा श्रुतदेवता क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और तिनकी शुद्ध कहनी कही है इसीतरें श्राद्धविधिमें पाठ लिखा है ॥

तथा वृदारुवृत्ति पाठः ॥ तत्र दैवसिकादिप्रतिक्रम  
णविधिरमून्यो गाथान्योवसेयः, तत्रेदं दैवसिकं । जि  
ण मुणिवंदण अश्वा, रुस्सगो पुत्ति वंदणियालोए ॥  
सुत्तं वंदण खामण, वंदण तिन्नेव उस्सग्गो ॥ १ ॥  
चरणो दंसणनाणे, उज्जोआडुन्निष्कस्कोअ ॥ सुअदेव  
याउं डुस्सग्गा, पुत्ती वंदण शुईं शुत्तं ॥ २ ॥ इत्यादि.

इहां वृदारुवृत्तिमें प्रतिक्रमेणकी आदिमें चैत्यवंद  
ना और श्रुतदेवताका क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग क  
रण कहा है अरु शुइनी कहनी.

तथा चैत्यवंदन लघु जाप्ये ॥ सुदिक्खिणुर समरणा  
चरिमे ॥ ४५ ॥ अर्थः—चैत्यवदनाके वारमें अधिका  
रमें सम्यक्दृष्टी देवताका कायोत्सर्ग करना और  
शुइ कहनी.

तथा प्रतिक्रमणागर्हित हेतु ग्रंथमें कहा है सो  
पाठ लिखते हैं ॥ अथ चावश्यकारंजे साधु. श्राव  
कश्चादौ श्रीदेवगुरुवंदनं विधत्ते, सर्वमप्यनुष्ठानं श्रीदे  
वगुरुवदनबहुमानादिजक्तिपूर्वकं सफलं नवतीति  
आह च ॥ विणयाहीआविज्जा, दिंति फलं इह परे  
अलोगंमि ॥ न फलंति विणयहीणा, सस्साणिवतो अ  
हीणाणि ॥ ९ ॥ नत्तीइ जिणवराणं, खिज्जंति पुव्वसं

चित्रा कम्मा ॥ आयरिय नमुक्कारेण, विज्जा मंताय  
 सिञ्चंति ॥ १० ॥ इति हेतोर्घादशनिरधिकारैश्चैत्यवं  
 दनाजाण्ये ॥ पढमहिगारे वंदे, नावजिणे वीअएउदव  
 जिणे ॥ १ ॥ इगचेइअ ठवणजिणे, तइअ चउढंमि  
 नामजिणे ४ ॥ १ तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचम  
 ए विहरमाणजिणठठे ६ ॥ सत्तमए सुअनाणं, ७  
 अठमए सबसि६ शुइ ॥ १ ॥ तिढाहिव वीर शुई,  
 नवमे ए दशमे अ उऊयंत शुइ १० अठावयाइइ  
 गदसि ११ सुदिठि सुरसमरणाचरिमे १२ ॥३॥ नमु १  
 जेअइ २ अरिहं, ३ लोण ४ सब ५ पुक्क ६ तम ७  
 सि६ ८ जोदेवा ए ॥ उज्जि १० चत्ता ११ वेया, वच्चग  
 १२ अहिगार पढमपया ॥४॥ इति गाथोक्तेर्देववंदनं वि  
 धाय चतुरादिह्रमाश्रमणैः श्रीगुरुन् वंदते ॥

अहं सुअ समिद्धिहेउं, सुअदेवीए करेइ उस्सगं ॥  
 चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ व देइ व तीइ शुई ॥ ५१ ॥ ए  
 वं खित्तसुरीए, उस्सगं कुणइ सुणइ देइ शुइ ॥  
 ॥ पढिउं च पंचमंगल, मुवविसइ पमऊसंमासं ॥५३॥

अर्थः—आवश्यकके आरंभमें बारां अधिकार पर्यं  
 त चैत्यवंदना करनी अर्थात् चार शुइसें चैत्यवंदना  
 करनी कही है, तथा यही ग्रंथमें श्रुतदेवता और

क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग और तिनकी दो शुद्ध कहनी  
ऐसा कथन उपर के पाठमें है.

तथा संवत् १९४३ के फाल्गुन चातुर्मासमें रत्न  
विजयजी, राजधनपुर नगरमें थे तिस समयमें एक  
श्रावकके घरमें ताडपत्रोंपर लिखी हुई संघाचार ना  
मा लघुनाथकी वृत्तिथी तिसकूं रत्नविजयजीनें वां  
ची और कहने लगेके देखो इस वृत्तिमेंनी तीन शुद्ध  
है इसमें हमारा मत सिद्ध है. तब तिनके पास जा  
नेवाले श्रावकोंने एक चिठी लिखके तिस पुस्तकके  
पत्रेपर चपटीनी तिस चिठीकी नकल हम यहां  
लिखते हैं ॥

संघाचार नाथना पाना ३९५ मां त्रण थो  
यो कही ठे ते टीकाकारें कही ठे सिद्धाणंबुद्धाणंणी  
कही ठे ॥ तारेइ नरव नारिवा ॥ वेयावच्चगराणं क  
हेवु ते कुडोपड्व उडाववाने वास्ते पानुं ( ३०४ )

इस चिठीके लेखमें रत्नविजयजीका कहना सब  
मिथ्या है ऐसा सिद्ध होता है. क्योंकि सुननेवाला  
त्रिनत्रिचार वाले होने वो कुठ संस्कृत प्राकृत जापा  
तो पढे नहीं है. तिनकों जो कोइ जिसतरे बहका  
देवे तिसतरे वो बहक जाते है. अब देखोके जिस

पाठके वास्ते चिन्ही चेपी है. तिस पाठसेंही रत्नवि  
 जयजीका मत स्वकपोलकल्पित मिथ्या सिद्ध हो  
 जाता है. सो पाठ नव्य जीवोंके जानने वास्ते हम  
 यहां लिखते हैं ॥ उक्तंच संघाचार ज्ञाप्ये चरमे द्वा  
 दशे अधिकारे । वेयावच्चगराणमित्यादि कायोत्सर्गक  
 रणं तदीयस्तुतिदानपर्यन्ते क्रियते इति शेषः । औचित्य  
 प्रवृत्तिरूपत्वाद्धर्मस्य अवस्थानुरूपव्यापाराजावे गुणा  
 नावापत्तेः । यतः औचित्यमेकमेकत्र गुणानां कोटिरे  
 कतः ॥ विषायते गुणग्राम औचित्ये परिवर्जितः ॥  
 अपिच अनौचित्यप्रवृत्तो महानपि मधुरारूपकवत्  
 कुबेरदत्ताया नवत्यल्पानामपि प्रत्युच्चारणादिजाज  
 नम् ॥ आह च ॥ आरंकाङ्गुपतिं यावदौचित्यं न वि  
 दंति ये ॥ सृष्टह्यंतः प्रचुत्वाय खेलनं ते सुमेधसाम् ॥  
 ॥ १ ॥ इदमत्र तात्पर्यं । सर्वदापि स्वपरावस्थानुरु  
 पया चेष्टया सर्वत्र प्रवर्तितव्यमिति ॥ उक्तं च ॥  
 सदैवौचित्यप्रवृत्त्या सर्वत्र प्रवर्तितव्यमित्यैदंपर्यमस्ये  
 ति ॥ मधुरारूपककुबेरदत्तादेव्योः संविधानकं त्विदं ॥  
 इह कुसुमपुरे नयरे, दृढधम्मो दृढरहो निवो आसी ॥  
 उचियपडिवत्तिवह्वी, पद्मवणो सजलजलवाहो ॥ १ ॥  
 सर एक यावि अप्न, मंमलं गयणमंमले जाव ॥ परिस

प्पेरं समंता, पासायतलच्छियो नियऽ ॥ १ ॥ तास  
 हसा तपहु पव, एणडिह्यं दहु चिंतऽ विरत्तो ॥ स्वण  
 डिछनछरुवा, अहह कहं सञ्जनावच्छिऽ ॥ ३ ॥ तथा  
 हि-संपञ्चंपकपुष्परागति रतिर्मत्तांगनापांगति, स्वाम्यं  
 पद्मदलायवारिकणति प्रेमा तडिदंडति ॥ लावण्यं  
 करिकर्णतालति वपुः कल्पान्तवातत्रम, दीपत्रायति  
 यौवनं गिरिणदीवेगत्यहो देहिनाम् ॥ ४ ॥ इय चिं  
 तिउं सविणयं, विणयंवर सुगुरुपास गहियवऊ ॥  
 गीयञ्चो विहरंतो, पत्तो सकयावि महुरपुरिं ॥ ५ ॥  
 तञ्च छिऊ चउमासं, कुवेरदत्ताऽ देवयाऽ गिहे ॥ इत्तव  
 तवचरणरउं, निरउ आयावणविहाणे ॥ ६ ॥ विग  
 हा निहाऽपमा, य वळ्ळिउं उञ्चुउं सुहप्राणो ॥ वामी  
 चंडणकप्पो, समोयमाणा वमाणोय ॥ ७ ॥ तं दहु  
 ह्छुछा, कुंवेरदत्ताह जो मुणिवरिठ ॥ पसियमहकहसु  
 फित्ते, करेमि मणऽत्तिय कयं ॥ ८ ॥ नणऽ मुणीउचिय  
 न्नु, नावन्नु दव्वखित्तकालन्नु ॥ मंवदाव सुज्जदे, सुमेरुसि  
 हरिच्छिण देवे ॥ ९ ॥ देवी नणेऽ एवं, करेमि करसंपुडेग  
 ह्किण ॥ नेउं सुमेरु सिहरे, लदुबंधावे सिनं देवे ॥  
 ॥ १० ॥ आह मुणिल्लऽ दुग्धिह, यीसंवट्टो वयाऽ  
 यारऱो ॥ तामस्त वम्मसीजे, अलं मय मणो

रहेण मिणा ॥ ११ ॥ तो सविसेसंतुष्ठा, कु  
 बेरदत्ता तहिं विणिम्मेइ ॥ गयण यलमणु लि  
 हंतं, सुकिंकिणी जाल कयसोहं ॥ १२ ॥ जिणवर सुपा  
 सअप्पडिम, पडिम समलंकियं अइ विसालं ॥ उत्ता  
 ण नयण प्पण, पिह्वणिव तिय मेहला कलियं ॥ १३ ॥  
 वरसवरयण मइयं, सुमेरु नामं कियं महाथूजं ॥ तं द  
 हुं विहिय मणो, समुणि वंदइ तहिं देवो ॥ १४ ॥ तं  
 थूनरयण मञ्जुय, नूयं दहूण मिह्वदिठीवि ॥ तइयाह  
 रि सुकरिसा, जायाजिण सासणे नत्ता ॥ १५ ॥ इयंतं  
 मि थूनरयणे, सुपास जिण काल संजवंमि सया ॥  
 सुर किखमाण पिसकण, खणंमि सुबहू गउ कालो ॥ १६ ॥  
 इहंतंरंमि खवगो, सुदंसणो नाम उग्गतवचरणो ॥  
 विहरइ वसुहावलण, महुराखव गुत्ति सुपसिद्धो ॥ १७ ॥  
 नवणे कुबेरदत्ता, इंसंठिउ सोकयाइ चउमासे ॥ आया  
 वणाइ निरउ, इकरतवचरण किसियंगो ॥ १८ ॥ त  
 त्तिवतंवाकंपियहियया सा देवया नणइ सुमुणे ॥  
 मह कह सुकिंपि कखं, जेणं तं लहु पसाहेमि ॥ १९ ॥  
 मुनिराह अनूचियन्नू, किं मह कखं असंजई इ तप ॥  
 साहमए तुह कखं, असंजईइ विधुवंहोही ॥ २० ॥ इय  
 न्निणउ अणुचियवय, ण सवण उप्पन्नमन्नुविवसमणा

॥ देवीगया सन्नाणं, मुणिवि अन्नञ्च विहरिञ्चा ॥११॥  
 अह तञ्च निवसहाए, थून्नकएसेय निस्कु निस्कूणं ॥१२॥  
 उ महंविवाउ, ठम्मासेञ्जाव नयञ्चिन्नो ॥ ११ ॥ संघे  
 ए तउ नणियं, कोञ्चित्तु मलं विवाय मेयंतु ॥ दुं दुं  
 महुरा खमगो, तञ्चइ मोऊत्ति आहूउ ॥१३॥ तेण त  
 वेणा कंपिय, हियया पत्ता कुवेरदत्ताह ॥ किंते करे  
 मि कथं, स नणइ तं कथ माहइमा ॥ १४ ॥ किंतुह  
 असंज इए, विइ णिहमएनणु पउयण जायं ॥ तो अ  
 णुतावा साहू, से मिञ्चा डुक्कडं देइ ॥ १५ ॥ साजण  
 इ खवग पुंगव, सेय पमागाइ दंसणा थून्ने ॥ गोसे त  
 हा जइस्सं, जह जिणइ इमे नियय संघो ॥ १६ ॥ इ  
 थदेवयाइ वयणं, सोउं खवगो कहेइ संघस्स ॥ संघो  
 वि गंतु साहइ, एव रन्नो जह नरिंद ॥ १७ ॥ जइअ  
 ह्न एस थून्नो, तोइह होही पजाए सियपडागा ॥  
 अह निस्कूणं तत्तो, रत्ताइय सुणिय नरनाहो ॥१८॥  
 तंथून्नंरस्कावइ, समंतउ नियनरेहिं अहूदेवी ॥ पवय  
 एनत्तापयडइ, थून्ने गोसेसियपडागं ॥ १९ ॥ तं पि  
 ञ्चविअठरिय, अणञ्च हरिसोनिवो पुरी जोउं ॥ उस्कि  
 ञ्च कलयररवं, क्खणमाणो नणइ वयणमिणं ॥ २० ॥  
 जयउ जए महकालं, एसो जिणनाहदेसिउं धम्मो ॥



जयउ इमो जिणसंघो, जयंतु जिणसासणे जत्ता ॥  
 ॥ ३१ ॥ ददु सुदिष्ठिसुरसुम, र णेणउ उप्पणं पवय  
 णस्स ॥ चिरयरउखवगोपा लिउणचरणगउ सुगइं  
 ॥ ३२ ॥ मधुरारूपकचरित्रं, श्रुत्वेत्वौचित्यवचो न  
 व्याः ॥ प्रवचनसमुन्नतिकरीं, सुदृष्टिसुरसं स्मृतिं कुरु  
 त ॥ ३३ ॥ इति मधुरारूपककथा ॥

अथ येऽधिकारा यत्प्रमाणेन जण्यंते ॥ तदसंमो  
 हनार्थं प्रकटयन्नाह ॥ नव अहिगारा इह ललिय विठरा  
 वितिमाऽअणुसारा ॥ तिन्निसुय परंपरया वीउदसमोऽ  
 गारसमो ॥ ३५ ॥ इह द्वादशस्वधिकारेषु मध्ये नव  
 अधिकाराः प्रथमतृतीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमाष्टनवम  
 द्वादशस्वरूपा या ललितविस्तरारख्या चैत्यवंदना मूल  
 वृत्तिस्तस्या अनुसारेण तत्र व्याख्यातास्तत्र प्रामाण्ये  
 न जण्यंते इति शेषः । तथाच तत्रोक्तं एतास्तिस्त्रः स्तु  
 तयो नियमेनोच्यंते केचित्त्वन्या अपि पठंति नच त  
 त्र नियम इति न तद्व्याख्यानक्रिया एवमेतत् पठि  
 त्वा उपचित पुण्यसंज्ञारा उचितेषूपयोगफलमेतदिति  
 ज्ञापनार्थं पठंति वेद्यावच्चगराणमित्यादि ॥ अत्र च  
 एता इति सिद्धाणं बुण १ जो देवाणवि २ एक्कोवीति  
 ॥ ३ ॥ अन्या अपीति उचिंतसेल १ चत्तारिअठ २

तथा जेय अर्हयेत्यादि ३ अतएवात्र बहुवचनं संज्ञा  
 व्यते ॥ अन्यथा द्विवचनं दद्यात् पठंतीति सेसाजहि  
 ङाए श्यावग्यकचूर्णिवचनादित्यर्थः नच तत्र नियम  
 इति न तद्द्वाराख्यानं क्रियते इति तु जणंतः श्रीहरिञ्ज  
 इस्वरिपादा एवं ज्ञापयंति यदत्र यदृष्टया नप्यते त  
 न्न व्याख्यायते यत्पुनर्नियमतो जणनीयं तद्द्वाराख्या  
 यते तद्द्वाराख्याने व्याख्यातं च वेयावच्चगराणमित्यादि  
 सूत्रं ॥ तथा चोक्तं ॥ एवमेतत्पठित्वेत्यादि यावत् प  
 ठंति ॥ वेयावच्चगराणमित्यादि ॥ ततश्च स्थितमेतत्  
 यदुत वेयावच्चगराणमित्यप्यधिकारोवश्यं जणनीय  
 एव अन्यथा व्याख्यानासंज्ञवात् ॥ यदि पुनरेषोपि  
 वेयावृत्त्यकराधिकार उच्यंताद्यधिकारवत् कैश्चित् ज  
 णनीयतया यादृक्किकः स्यात् तदा उचित सेलेत्यादि  
 गाथावदयमपि न व्याख्यायेत व्याख्यातश्च नियमज  
 णनीय सिद्धादिगाथान्निः सहायमनुविद्धसंबंधेनेत्य  
 त्तोऽनुष्ठितसंबंधायातत्वात्सिद्धाधिकारवदनुस्यूत एव  
 जणनीयः अथाप्रमाणं तत्र व्याख्यातं सूत्रमिति चेत्  
 एवं तर्हि हंत सकलचैत्यवंदना क्रमाज्ञावप्रसंगः सूत्रे  
 चास्या एवं क्रमस्यादर्शितत्वात् तदन्यत्र तथा व्याख्या  
 नाज्ञावात् व्याख्यानेप्येतदनुसारित्वात्तस्य पश्चात्काल

प्रज्वत्त्वान्नव्यकरणस्य न सुंदरस्यापि नवनिबंधनत्वात्  
 त्रोक्तस्योपदेशायाततया स्वहृदकल्पिताजावादिति प  
 रिजावनीयम् बह्वत्र माध्यस्थ्यमनसा विमर्शनीयं सू  
 क्ष्मया धिया विचिंतनीयं सिद्धांतरहस्यं पर्युपासनीयं  
 श्रुतवृद्धानां प्रवर्तितव्यं असदाग्रहविरहेण यतितव्यं  
 निजशक्त्यनुकूल्यमिति एवं च द्वितीयदशमैकादशव  
 र्जिताः शेषाः प्रथमाद्या द्वादशपर्यन्ता नव अधिकारा  
 उपदेशायातलजितविस्तराव्याख्यातस्तत्र सिद्धा इति  
 सिद्धं । आदिशब्दात् पाह्निकसूत्रचूर्ण्यादिग्रहः । तत्र सू  
 त्रं देवसंक्रियन्ति अत्र चूर्णिः । विरइ पडिवत्तिकाले चि  
 इवंदणा इणो वयारेण ॥ अवस्सं अहा संनिहया दे  
 वया संनिहाणं सिजवइ अउदेवसिस्किणयन्ति ॥

अयमत्र जावार्थः तावज्जणधरैर्दाढ्यार्थं पंचसाह्नि  
 कं धर्मानुष्ठानं प्रतिपादितं लोकेपि व्यवहारदाढ्यस्य  
 तथा दर्शनात् तत्र देवा अपि साह्निण उक्तास्ते च चै  
 त्यवंदनाद्युपचारेणासनीजूताः साह्नितां प्रतिपद्यन्ते  
 चैत्यवंदनामध्ये च तेषामुपचारः कायोत्सर्गस्तुतिदा  
 नादिना क्रियते अन्यस्य तत्रासंजवात् अश्रुतत्वाच्च त  
 तश्चैवमायातं तथा चैत्यवंदनामध्ये देवकायोत्सर्गादि  
 करणीयमेव अन्यथा तत्रान्यत्तदुपचाराजावे देवसा

द्विकृत्वात्सिद्धेः चूर्णिकारेण तथैव व्याख्यातत्वान्निश्ची  
यते तच्च देवसत्त्विक्यं तिस्रप्रामाण्यात् ॥

इस उपर लिखे दूए पाठकी जापा लिखते हे ॥  
चरम कहते वारमे अधिकारमें वेयावच्चगराणमित्यादि  
कायोत्सर्गका करनां तिसकी स्तुति पर्यतमें देनी क्योंकि  
यह सम्यक्दृष्टि देवताके साथ उचित प्रवृत्तिरूप हो  
नेसें धर्मकों अवस्थानुरूप व्यापारके अनावसें गुण  
अनावकी आपत्ति होनेसें एक पासें औचित्य स्थापी  
यें और एक पासें गुणांकी कोटी स्थापीयें औचित्यके  
विना सर्व गुण विपकी तरें आचरण करंगे ॥ १ ॥

अनौचित्यप्रवृत्त होनेसें यद्यपि महान्पुरुष मधुरा  
रूपक था तोजि कुवेरदत्ता सम्यक्दृष्टिणी देवीके सा  
थ अनौचित्यप्रवृत्ति करनेसें मिठामिड्कड देना पडा  
॥ आह च ॥ रंकसें ले कर राजा पर्यत जे पुरुष औचि  
त्यप्रवृत्ति करनी नही जानते है, अरु वे पुरुष प्रभु  
ता उकुराइके तांइ चाहते है, पर ते पुरुष बुद्धिमानो  
के खिलोने है ॥ १ ॥ इहां यह तात्पर्य है के सदाका  
ल अपनी परकी अवस्था अनुरूप उचित प्रवृत्ति  
करके प्रवृत्त होना चाहियें सदा औचित्य प्रवृत्ति करके  
सर्वत्र प्रवर्तना चाहियें यह तात्पर्यार्थि है ॥ इस क

थन उपर मथुरा रूपक और कुबेरदत्ता देवीका दृष्टांत कहा है ॥ तिस दृष्टांतका जावार्थ यह हैके प्रथम मुनिके कहनेसे संतुष्ट होके कुबेरदत्ता देवीने श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामीके वखतमें मथुरा नगरीमें श्रीसुपार्श्वनाथ अरिहंतका मेरु पर्वत सहस्र स्तुतन प्रतिमा सहित रचा. कितनेक काल पीठे अन्यदर्शनी और जैनीयोका यह स्तुतन वावत विवाद हुआ, उहां अन्यदर्शनी अपने मतका स्तुतन कहने लगे, और जैनीनी अपने मतका स्तुतन है ऐसा कहने लगे. जब राजासेंजी यह विवाद न मिटा तब श्रीसंघने तिस कालमें मथुरा रूपक नामा साधूकूं अति शयवान् जानके बुझाया. तिस मथुरारूपक उपर पहिजां कुबेरदत्ता देवीने संतुष्ट होके कहा था के हे मुनि में क्या तेरे मन इच्छित कार्यकूं संपादन करूं ? तब मथुरारूपक मुनिने कहाके मैं तपके प्रजावसें सर्व कर सक्ता हूं तो तेरे असंयताके साहाय्य वांठनेसें मुजे क्या प्रयोजन है ? तब कुबेरदत्ता रोष करके जती रही सो मथुरारूपक फिरके आया तिसने तपसें देवीको आराध्या. तब देवी प्रगट होके कहने लगी. मैं तेरा क्या कार्य करूं ? तब मथुरारूपक कहने लगा. श्री

संघकी जीत कर. तब कुबेरदत्ताजी कहने लगी के तेरा मेरे असंघतिसें क्या प्रयोजन अब उत्पन्न हुवा के जिस्सें तें मुजकों याद करा ? तदपीठें साधुने पश्चात्ताप करा. और कुबेरदत्ता देवीसें मिष्ठामि झुकडं दीना. तब देवीनें कहा में कलकूं स्तुनके उपर श्वेत पताका करुंगी, और संघ तथा राजाकों कहे जेकरी श्वदिने प्रजातकों श्वेत वर्णकी पताका होवे, तो हमारा शुभ जानना अरु जो अन्य वर्णकी पताका होवे, तो हमारा नही जानना. यह बात सुन कर राजाने अपने नौकरोंसें पहरा दिलवाया परंतु प्रवचन जक्त देवीनें प्रजातमें श्वेतपताका कर दीनी ति सकूं देखकें राजा अरु प्रजाने उत्कृष्ट कल कल शब्द क रकें कहा के बहुत कालतक यह जैनशासन जयवंत रहीयो, अरु संघ जयवत रहो, जिनशासनके जक्त जयवत रहो, इसीतरे सम्यक्दृष्टि देवताका स्मरण करनेमें प्रवचनकी प्रजावना देखकें बहुत लोकों जे नधर्मी हो गये, मुनिजी सुगतिमें गया ॥ इति मधुरा रूपकवृत्तांत. ॥ इस वास्ते सम्यक्दृष्टि देवताका अ वश्यमेव कायोत्सर्ग करके शुद्ध कहनी चाहियें.

अथ जे अधिकार जिस प्रमाणसें कहे हे. ति

नके असंमोहार्थे लघुनाथ्यकार प्रगट करते हैं ॥  
गाथा ॥ नव अहिगारा इह ललि, यविञ्जरा वित्तिमाइ  
अणुसारा ॥ तिन्नि सुयपरंपरया, वीउ दसमो इगार  
समो ॥ ३५ ॥

इहां वारा अधिकारमेंसें पहिला, तीसरा, चौथा,  
पांचमा, ठठा, सातवा, आठहवा, नवमा अरु वा  
रहवा, यह नव अधिकार लजितविस्तरा नामा चैत्यवं  
दनाकी जो मूलवृत्ति है तिसके अनुसारसें कथन  
करे हैं ॥ तथाच तत्रोक्तं ॥ यह तीन शुश्यां सिद्धाणं  
इत्यादि जो है सो निश्चयसें कहनी चाहियें, और  
कितनेक आचार्य अन्य शुश्यांजी इनके पीठें कहते  
हैं. परं तहां नियम नहीं है के अवश्य कहनी इस  
वास्ते मैने तिनका व्याख्यान नहीं करा है. जैसें  
यह “सिद्धाणं बुद्धाणं” पाठ पढके उपचित्त पुण्य समू  
हसें जरा दूआ उचितो विषे उपयोग करनां यह  
फल है. इसके जनावने वास्ते यह पाठ पढे.

वेयावच्चगराणं इत्यादि ॥ इहां वली ‘एता’ जैसे  
शब्दसें ? सिद्धाणंबुद्धाणं, १ जो देवाणविदेवो, २  
इक्कोवि नमुक्कारो, अन्याअपि इस शब्दसें ? उवंतसे  
ल०” ॥ १ चत्तारी अठ० ॥ तथा ३ जेय अईया

सिद्धा इत्यादि इसी वास्ते इहां बहुवचन दीया है., नही तो द्विवचन देते पठंति ऐसी बहुवचन रूप क्रिया है. " सेसाजहिष्ठा " शेष श्रुत्यां जैसी इष्ठा होवे तैसें कहे, यह आवश्यक चूर्णिके वचनका प्रमाण है. नच तत्र नियम इति ॥ नतद्व्याख्यानं क्रियते इति ॥ ऐसा कहन कहते हुए. श्रीहरिचिद्सूरिपूज्य ऐसें ज्ञापन करते हैं के जो पाठ यहां चैत्यवंदनामें अपनी यथेत्तासें कहते हैं, तिसका व्याख्यान हम नही करते हैं, जो पाठ चैत्यवंदनामें निश्चयसें कहने योग्य है, तिसका व्याख्यान करते हैं. तिसके व्याख्यान करनेसें वेयावच्चगराणं इत्यादि सूत्रकाजी व्याख्यान करा ॥

तथा चोक्तं ॥ ऐसें यह पढके यावत् वेयावच्चगराणं इत्यादि पढे ॥ इस कहनेसें वेयावच्चगराणं इत्यादि अवश्य पढने योग्यही है, यह सिद्ध दूया. जेकर वेयावच्चगराणं यह पाठ अवश्य पढने योग्य न होता तो श्रीहरिचिद्सूरिजी अपनी प्रतिज्ञाप्रमाणे इस पाठका व्याख्यान न करते. जेकर यह " वेयावच्चगराणं " पाठाधिकारकों उचिंतादि अधिकारकी तरें केइ आचार्य पढते, केइ न पढते, तब तो याद



द्विक होता. तब तो उचितादि गाथाकी तरें इसका जी व्याख्यान श्रीहरिजसूरिजी न करते, परंतु उनोंने व्याख्यान करा है, इस वास्ते सिद्धादि गाथा योंके साथ वेयावच्चगराणं इत्यादि यह पाठ अनुविद्ध अर्थात् प्रोता दूआ है. बिचमें टूटा दूआ नहीं है. इसवास्ते सिद्धाणं इत्यादि गाथायोंके साथ प्रोता दूआजी पढने योग्य है.

अथ जेकर तुं कहेगा के ललितविस्तरामें श्रीहरिजसूरिजीका करा दूआ व्याख्यान हमकूं प्रमाण नहीं है तब तो सकल चैत्यवंदनाके क्रमका अज्ञाव होवेगा. क्योंकि सूत्रमें चैत्यवंदनाका ऐसा क्रम कहा नहीं है. और ललितविस्तरा बिना चैत्यवंदनाके क्रमका अन्यग्रंथमें व्याख्यानके अज्ञावसें कदाचित् किसी ग्रंथमें व्याख्यान कराजी होगा. सोजी ललितविस्तराके अनुसारी होनेसें पीठेही करा है, और नवीन व्याख्यान, जेकर कोइ अज्ञानी करे तोजी सो व्याख्यान, संसारकी वृद्धि करनेवाला है, और जो ललितविस्तरामें व्याख्यान है, सो गुरुपरंपराके उपदेशसें आया है इसवास्ते स्वहृंद कल्पनासें नहीं है. यहां मध्यस्थ होके विचार करणा योग्य है, सूक्ष्म

बुद्धि करके सूत्रका रहस्य चिंतन करणा, और श्रुतवृद्धोंकी सेवा करणी योग्य है, कदाग्रहरहित प्रवर्तना चाहिये. और अपनी शक्त्यनुकूल यत्न करना चाहिये ॥

ऐसे दूसरा, दसवा अरु अग्यारहवा यह तीन वर्जके शेष प्रथमादिसें लेकर वारमे अधिकार पर्यंत न व अधिकार गुरु परंपराके उपदेशसें आये हुए जलितविस्तरामें व्याख्यान कर गए है.

तहां सिद्धा इति सिद्धं आदि शब्दसें पाक्षिक सूत्रकी चूर्णादि ग्रहण करनी, तहां पाक्षिकसूत्रमें ऐसा सूत्र है “ देवसस्त्रियत्ति ” ॥ अत्र चूर्णः ॥ विरतिके अंगीकार करणके कालमें चैत्यवंदनादि उपचारके अर्थात् चैत्यवंदनामें सम्यक्दृष्टि देवताका का योत्सर्ग करणे और धुइके पठनरूप उपचारके करणसें अवश्यमेव यथा संनिहित देवता निकट होता है, इस वास्ते देवसस्त्रियं ऐसा पाठ पढते हैं, यह इहां नावार्थ है.

गणधरोंने प्रथम दृढताके वास्ते पांचकी साक्षिसें धर्मानुष्ठान प्रतिपादन करा है. लोकमेंनी दृढ व्यवहार, पंचोंकी साक्षिसें करा देखनेमें तेसेही आता है. तहां पाक्षिकसूत्रमें देवताकी साक्षी कहे हैं, ते दे

वता जे चैत्यवंदनादिकके उपचारसें निकट हुए हैं, वे देवता साक्षिपणा अंगीकार करते है. क्योंकि चैत्य वंदनामें तिन देवतायोंका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी शुद्ध कहनी यह उपचार करिये हैं, अन्य कोइ उपचार तहां संजवे नही है, और हमने अन्य कोइ श्रवणजी नही करा है. तब तो यह सिद्ध हुआ के चैत्यवंदनामें सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग करणा, और तिनकी शुद्ध साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं अवश्यमेव कहनी चाहिये; अन्यथा अ पर उपचार तो तिनका कोइ है नही. तिस वास्ते तिनका साक्षी होनाजी सिद्ध नही होवेगा, चूर्णिकार तैसेही व्याख्यान करणसें निश्चय करते है, सो पाठ यह है. “ देवसस्त्रियं ” इति सूत्र प्रामाण्यात् ॥

तथा ३०४ के पत्रेका पाठ ॥ तथा प्रवचनसुराः सम्यग्दृष्टयो देवास्तेषां स्मरणार्थं वैयावृत्त्यकरेत्यादि विशेषणद्वारेणोपबृंहणार्थं कुडोपड्वविडावणादिकृते तत्तज्जुणप्रशंसया प्रोत्साहनार्थमित्यर्थः । यद्वा तत्कर्तव्यानां वैयावृत्त्यादीनां प्रमादादिना श्लथीजूतानां प्रवृत्त्यर्थमश्लथीजूता नतु स्थैर्याय च स्मरणात् ज्ञापनात् तदर्थं सारणार्थं वा प्रवचनप्रजावनादौ हित

कार्ये प्रेरणार्थक उत्सर्गः कायोत्सर्गः चरम इति शेषः  
 ज्ञेयानि निमित्तानि प्रयोजनानि फलानीति यावद  
 ष्ठी चैत्यवन्दना या न्वन्तीति शेषः । इह च यद्यपि वैया  
 वृत्यकरादयः स्वस्मरणार्थं क्रियमाणं कायोत्सर्गं  
 न जानते, तथापि तद्विषयकायोत्सर्गात् वसुदेवहिंस्यु  
 क्तस्य तत्कर्तुः श्रीगुप्तश्रेष्ठिन इव विघ्नोपशमादिषु शुच  
 सिद्धिर्नवत्येव आप्तोपदिष्टत्वेनाव्यञ्जित्वात् यथा  
 स्तंजनीयानिः परिज्ञाने आप्तोपदेशेन स्तंजनादिकर्म  
 कर्तुः स्तंजनाद्यनीष्टफलसिद्धिः । उक्तं च चूर्णौ तेसिमवि  
 न्नाणे विद्म, तवि सउस्सग्गउं फलं होइ ॥ विघ्नज्ज  
 य पुन्नवं धाइ कारणं संतताए एत्ति ज्ञापयति चैतदि  
 दमेव कायोत्सर्गप्रवर्तकं वेयावच्चगराणमित्यादि सूत्रम्  
 अन्यथानीष्टफलसिद्ध्यादौ प्रवर्तकत्वायोगात् उक्तं च  
 ललितविस्तरायां तदपरिज्ञानेऽप्यस्मान्नुचसिद्धाविद  
 मेव वचनं ज्ञापकमिति श्रीगुप्तश्रेष्ठिकथां त्वियम् ॥

जापा ॥ तथा प्रवचनदेवता सम्यक्दृष्टि देवता  
 तिनके स्मरणार्थं वैयावृत्यकर इत्यादि विशेषणो  
 द्वारा तिनकी उपवृंहणा करणेके अर्थे कुशोपश्वके  
 दूर करणे वास्ते तिसके ते ते गुणोंकी प्रशंसा करके  
 तिसके उत्साह उत्पन्न करणे वास्ते अथवा तिनके

करणे योग्य वैयावृत्त्यादि कृत्योंके प्रमादादिसैं तिनके करणमें सिधिल दूआंकों प्रवृत्त्य करणेवास्ते, और उद्यमवंतोंकी स्थिरताके वास्ते, तिनके जनावने वास्ते, अथवा प्रवचनकी प्रजावनादि हितकार्यमें प्रेरणार्थे कायोत्सर्ग चरम होता है. यह पूर्वोक्त निमित्त प्रयोजन फल है, यह चैत्यवंदनका तात्पर्यार्थ है.

यहां यद्यपि वैयावृत्त्यकरादि देवता तिनके स्मरणार्थे क्रियमाण कायोत्सर्ग वे नहीं जानते है, तोनी तिन विषयिक कायोत्सर्ग करणसें वसुदेव हिं मद्युक्त कायोत्सर्ग करनेवाले श्रीगुप्तश्रेष्ठीकी तरें विघ्नोपशमादिकोमें शुभसिद्धि होतीही है. आप्तका जो कहना है सो व्यञ्जिचारी नहीं है. इस वास्ते जैसे थंजनी विद्याकों आप्तोपदेशसें थंजनादि कर्ममें प्रथुं ज्या श्रुतफलकी सिद्धि तिन विद्याकी अधिष्ठाताके विना जानेनी होती है.

चूर्णमें कहा है. तिन वैयावृत्त्यकरादिकोंके विना जाण्यानी कायोत्सर्गका फल विघ्नजय पुण्यबंधादिक होते है. संतताएणत्ति ७ ॥ जनाता खबर देता है. यही कायोत्सर्गप्रवर्तक वेयावच्चगराणं इत्यादि सूत्र अन्यथा मनोवांबित सिद्ध्यादिमें प्रवर्तक न हो

वेगा. ललितविस्तरामें कहा है के, यद्यपि जिनका कायोत्सर्ग करीयें है, वे कायोत्सर्ग करतेको नही जानते है, तोजी तिसके कारणसें शुनसिद्धि होती है. इस कथनमें वैयावृत्त्यकराणं यही सूत्र ज्ञापक प्रमाणनूत है.

अब बुद्धिमानोको विचारणा चाहियें के संघाचा रवृत्तिके इन पूर्वोक्त दोनो लेखोसें सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनकी शुद्ध कहनी इन दोनो वातोमें किसीजी जैनधर्मीको शंका रह सकती है. के सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग जैनमतके शास्त्रमें करणा कहा है के नही कहा है ? इन पूर्वोक्त पाठोसें निश्चें सिद्ध होता है के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाने सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग अवश्यमेव करणा.

अब रत्नविजयजी जो जोले लोकोंको कहते फिरते है के, इन पाठोसें हमारा मत सिद्ध होता है, ऐसा कपट ठल करके जोले जीवांकुं कुपथमें गेरना यह क्या सम्यग्दृष्टि, संयमी, सत्यवादी, नवजीरु, धूर्ततासें रहितोंके लक्षण है ? बनिये, विचारे कृव पढे तो नही है, इसवास्ते इनकुं क्या खबर है

के यह हमारे साथ धूर्तताइ करता है वा नहीं करता है ? यह बात कुछ बनिये समजते नहीं.

परंतु रत्नविजयजीकूं साधु नाम धरायकें ऐसे ऐसे ठल कपटके काम करणो उचित नहीं है. हमारी तो यह परम मित्रतासैं शिक्षा है, मानना न मानना तो रत्नविजयजीके अधीन है.

तथा रत्नविजयजीकूं इस संघाचारवृत्तिका तात्पर्यार्थनी मालुम नहीं हुआ होगा नहीं तो अपने मतकी हानिकारक चिठी इस पुस्तकमें काहेको ल गवाता ?

तथा आवश्यककी अर्थ दीपिकाका पाठ लिखते हैं ॥ तथा सम्यग्दृष्टयोऽर्हत्पाह्निका देवा देव्यश्चेत्येक शेषादेवा धरणींशंबिकायक्षादयो ददतु प्रयत्नंतु समाधिं चित्तस्वास्थ्यं समाधिर्हि मूलं सर्वधर्माणां स्कंध इव शाखानां शाखा वा पुष्पं वा फलस्य, बीजं वांकुरस्य चित्तस्वास्थ्यं विना विशिष्टानुष्ठानस्यापि कष्टानुप्रायत्वात् समाधिव्याधिर्निर्विधुर्यता तन्निरोधश्च तद्धेतुकोपसर्गनिवारणेन स्यादिति तत्प्रार्थनाबोधिं परलोके जिनधर्मप्राप्तिः यतः सावयधरंमिवरहुङ्ग चेडउ नाण देसणसमेउ ॥ मिच्चत्तमोहि अमई, माराया चक्कवट्टी

वि ॥ १ ॥ कश्चिद्भुते ते देवाः समाधिवोधिदाने किं स  
मर्था न वा यद्यसमर्थास्तर्हि तत्प्रार्थनस्य वैयर्थ्यं यदि  
समर्थास्तर्हि दूरजव्यान्व्येन्यः किं न यद्वन्ति अथैवं म  
न्यते योग्यानामेवं समर्थानां. योग्यानां तर्हि योग्यतै  
व प्रमाणं किं तैरजागलस्तनकल्पैः। अत्रोत्तरं सर्वत्र यो  
ग्यतैव प्रमाणं परं न वयं विचाराहमं नियतिवाद्यादि  
वदेकांतवादिनः किंतु सर्वेनयसमूहात्मकस्याद्वाद्वा  
दिनः सामग्री वै जनिकेति वचनात् तथाहि घटनिष्प  
त्तौ मृदो योग्यतायामपि कुलालचक्रचीवरद्वरकदंभा  
दयोऽपि सहकारिकारणमेवमिहापि जीवस्य योग्यता  
यां सत्यामपि तथातथाप्रत्यूहव्यूहनिराकरणेन दे  
वा अपिसमाधिवोधि दाने समर्थाः स्युर्मेतार्यस्य प्रा  
ग्भवमित्रसुर इवेति बलवती तत्प्रार्थना । ननु देवादि  
षु प्रार्थनावद्गुमानादिकरणे कथं न सम्यक्त्वमालिन्यं ?  
उच्यते नहि ते मोक्षं दास्यंतीति प्रार्थ्यते बहु मन्यते  
वा किंतु धर्मध्यानकरणे अंतरायं निराकुर्वतीति नैवं  
कश्चिदोपः पूर्वश्रुतधैरैरप्याचीर्णत्वादागमोक्तत्वाच्च उ  
क्तं चावश्यकचूर्णो श्रीवज्रस्वामिचरिते तद्वय अप्राप्ते  
अन्नोगिरीत गया तद्व देवया ए काउस्सगो कउ सावि  
अष्टुठिआ अणुगहति आणुन्नायमिति आवश्यकका



योत्सर्गनिर्युक्तावपि ॥ चाउम्मासिअवरिसे, उस्सग्गो  
 खित्त देवआएअ ॥ पक्खिअ सिङ्गसुराए, करेति चउमा  
 सिए वेगे ॥ १ ॥ वृहद्भाग्येपि । पारिअ काउस्सग्गो, परि  
 मिठीणं च कयनमुक्कारो ॥ वेयावच्चगराणं, दिङ्ग शुई  
 जकपमुहाणं ॥ १४४४ प्रकरण कृत श्रीहरिजन्म सूत्र  
 योऽप्याहुः ललितविस्तरायां चतुर्थीं स्तुतिर्वेयावच्चग  
 राणमिति । तदेवं प्रार्थनाकरणेऽपि न काचिदयुक्तिरिति  
 सप्तचत्वारिंशगाथार्थः ॥ ४७ ॥

जाषा ॥ तथा सम्यक्दृष्टि श्रीअरिहंतके पद्मी दे  
 वता और देवी जो है, देवता धरणींइ अंबिकादि  
 यह देव चित्त समाधि चित्तका स्वस्थ पणा द्यो,  
 क्योंकि समाधिही सर्व धर्मोंका मूल है. जैसे शाखा  
 योंका ? फूल, फलका, बीज अंकूरका मूल, स्कंध है  
 तैसें यहजी जान लेना चित्तके स्वास्थ्य विना सर्वा  
 नुष्ठान कष्टतुल्य है. वैधूर्यताका निरोध करणा, उस  
 को समाधि कहना सो वैधूर्यताका हेतु जो उपसर्ग  
 है तिसके निवारण करणेसें होती है इस वास्ते तिस  
 की प्रार्थना है.

तथा बोधि जो है सो परलोकमें जिनधर्मकी प्रा  
 तिका नाम है. कहा नी हैकि मैं परजन्ममें श्रावकके ध

रमें ज्ञान दर्शन संयुक्त जो दासजी हो जाऊं तो अज्ञा है. परंतु मिथ्या मोहमति वाला चक्रवर्तीराजा जी न हों. इहां कोई प्रश्न करता है. ते देव जो है वो समाधि अरु बोधि देनेकों समर्थ है वा नहीं है? जे कर कहोगे कि असमर्थ है तवतो तिनसें जो प्रार्थना करनी है सो व्यर्थ है, जे कर कहोगे कि समर्थ है तो दूरजव्य और अनजव्योंकों क्यों नहीं देते है? जे कर हे आश्चर्य तूं ऐसे मानेगाके योग्य पुरुषोंकों देते हैं तवतो योग्यताही प्रमाणजुत हुइ. तव बकरीके गलेके थणासमान निरुपयोगी तिन देवतायोंकी कल्पना करणसें क्या फल है?

अत्रोत्तरं ॥ सर्वत्र योग्यताही प्रमाण है, परंतु तर्कसहने असमर्थ होणहार वादीके मत मानने वा लोंकी तरें हम एकांतवादी नहीं है, किंतु सर्व न्यायात्मक स्याद्वादवादी है. सामग्रीही जनक है, इस वचनके प्रमाणसें जानना. सोई दिखाते है.

जैसे घट निष्पत्तिमें माटीकों योग्यताजी है तोजी कुंजार, चक्र, चीवर, मोरा, ढंफादिकजी सहकारी कारण होवे तवही घट बनता है. तैसे यहांजी जे कर जीवमें योग्यताके दूएँजी तथा तथा विघ्न समूहोंके

दूर करणसें मेतार्यमुनिके पूर्व जीवके मित्र देवताकी तरें देवताजी समाधि अरु बोधि देनेमें समर्थ है. इस वास्ते तिनोंकी प्रार्थना बलवती है.

फेर वादी तर्क करता है कि देवादिकोंके विषे प्रार्थना बहुमानादि करनेसें तुमारी सम्यक्त्व मलीन क्यों नही होवेगी ? अपि तु होवेगीही.

उत्तर:—वो देवता हमकों मोक्ष देवेंगे इस वास्ते हम तिनकी प्रार्थना बहुमान नही करते है, किंतु धर्मध्यानके करणमें जो कदापि विघ्न आ कर पडे तो तिनको विघ्न दूर करते है, इस वास्ते प्रार्थना करते है. पूर्व श्रुतधारीयोंने इसकों आचरणसें, और आगममें कहने सें, जैसें करणमें कोइनी दोष नही है.

आवश्यक चूर्षिमें श्रीवज्रस्वामिके चरित्रमें जैसें कहा है. वहां निकट अन्य पर्वतथा वाहां गए तहां देवताका कायोत्सर्ग करा, सो देवी जाश्रुत नइ, अरु कहने लगीकी तुमने मेरे पर बडा अनुग्रह करा जैसें कहके आज्ञा दीनी.

तथा आवश्यक कायोत्सर्ग निर्युक्तिमेंनी कहा है कि चातुर्मासी संवत्सरिके प्रतिक्रमणमें क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा. और पहिप्रतिक्रमणमें जवनदेव

ताका कायोत्सर्ग करणा, केइक चातुर्मासीमेंनी नव नदेवताका कायोत्सर्ग करते है.

वृहज्जाप्यमेंनी कहा हैकी कायोत्सर्ग पारके, और पंचपरमेष्ठिकों नमस्कार करके, “वेयावच्चगराणं०” वैयावृत्त्यादि करणेवाले यह देवताकी शुई कहे.

तथा चौदहसं चुवालीस १४४४ प्रकरणके कर्त्ता श्रीहरिन्ऽसूरिजीनेंनी ललितविस्तरा ग्रंथमें कहा है कि चौथी शुइ वैयावृत्य करनेवाले देवतायोंकी कहनी इसवास्ते प्रार्थना करणेमें कोइनी अयुक्ति नही है. इति सेंतालीशमी ४७ गाथाका अर्थ है, यह श्रावकके आवश्यकके पाठकी टीका है—अब जो कोइ इसकों न माने तिसकों दीर्घ संसारिके शिवाय और क्या कहियें ?

तथा विधिप्रपाग्रंथका पाठ लिखते है. पुत्रोलिंगि या पडिक्कमण सामायारी पुण एसा ॥ सावउं गुरुहि समं इक्को वा जावंति चेइयाइं तिगहा डुग शुत्त पणि हाणवथं चेइयाइं वदित्तु चउराइं खमासमणेहिं आ यरियाइं वंदिथ नूनिहियसिरो सबस्सवि देवसिय इच्चा इ दंमणेण सयजाइयार मिब्बुक्कडं दाउं उच्चिय सा माइय सुत्तं नणितुं इवामि ठाउं काउस्सग्गमिच्चाइं

सुत्तं नणिय पलंबिय जुय कुप्पर धरिय नान्नि अहो  
 ज्जाणुद्धं चउरंगुल ठविय कडिपट्टो ॥ सजइ कविताइ  
 दोसरहियं काउस्सग्गं काउं ज्जहक्कमं दिणकए अ  
 श्यारे हिए धरिय नमोक्कारेण पारिय चउवीसत्तयं प  
 ठिय संमासगे पमब्बिय उवविसिय अलग्गवियय वा  
 हु जुउ मुहणंतए पंचवीसं पडिलेहणाउं काउं काए  
 वितत्तियाउ चेव कुणइ साविया पुण पुठि सिरहिययं  
 वयं पन्नरसकुणइ ॥ उठियवत्तीसदोसरहियं पणवीसा  
 वस्सय सुद्धं किइ कम्मं काउं अवणयग्गो करज्जुय  
 विद्धिधरियपुत्तीदेवसियाश्याराणं गुरुपुरउं वियडडं आ  
 लोयणदंमगं पठइ ॥ तउं पुत्ती एकठासणं पाउं  
 ठणं वा पडिलेहिय वा मज्जाणुद्धिछादाहियं च  
 उद्धं काउं करज्जुय गहिय पुत्तीसम्मं पडिकमए  
 सुत्तं नणइ तउं दव्वजावुठित्त अणुठित्तमि श्चाइ दं  
 मगं पठित्तावंदणदाउंपणाइसुक्कइ सुतिन्नि खामित्ता ॥  
 सामन्नसाहूसुपुणठवणायरिएण समं खामणं काउं  
 तउं तिन्निसाहूखामित्तापुणोकीकम्मंकाउं उइ छित्तसि  
 रकयंजलीआयरिय उवप्राए श्चाइंगाहातिगं पठित्ता ॥  
 सामाश्य सुत्तं उस्सग्ग दंमयं च नणिय काउस्सग्गे  
 अरित्ताश्यारसुद्धिनिमित्तं उवोयडुगं चित्तेइ तउं गु

रुणां पारिए पारित्ता सम्मत्त सुदिहेउ उद्योयं  
 पठिय सबलोय अरहंत चेश्याराअणुस्सग्गं काउं  
 उद्योयं चिंतिय सुयसोहि निमित्तं पुस्करवरदीवटं  
 कट्टिय पुणो पणवीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं पारिय  
 सिद्धव पठित्ता सुयदेवयाए काउस्सग्गे नमोक्कारं चिं  
 तिय तीसेथुइं देइ सुणइ व एवं खित्तदेवयाएवि काउ  
 स्सग्गे नमोक्कारं चित्तिऊण पारिय तहुई दाउं सोउं  
 वा पंचमंगलं पठिय संमासए पमज्जिय उवविसिय  
 पुवं च पुत्तिं पेहिय वंदणं दाउं इहामो अणुसंठित्त  
 णियज्जाएहिठाउवध्माणकरस्तरा तिन्नि थुईउ पठि  
 य सक्कळयथुत्तंच जणिय आयरियाई वंदिय पायत्ति  
 त्तविसोहणं काउस्सग्गं काउं उद्योयचउक्कं चिंतिइत्ति  
 ॥ देवसियपडिक्कमणविही ॥

जापा ॥ विधिप्रपाग्रंथमें प्रतिक्रमणेकि विधि ऐसा  
 लिखा हे. पूर्वे जो सामान्य प्रकारे प्रतिक्रमणेकी स  
 माचारी कही थी. सो यह है के श्रावक अपने गुरुके  
 साथ, अथवा एकला जावंति चेश्याइं यह दो गाथा,  
 स्तोत्र, प्रणिधान ये वर्जके, शेष शक्रस्तव पर्यंत  
 चार थुइसें चैत्यवंदना करके, चार द्दमाश्रमणसें, आ  
 चार्यादिकोंकों वांदके नूमि उपर मस्तक लगाके, सब

स्सवि देवसिय इत्यादि दंभकसें सकल अतिचारोंका मिथ्या डुष्कृत देवे. पीठे ऊठके, सामायिक सूत्र क हके, इहामि गइउं काउस्सग्गं इत्यादि सूत्र पढके, लांबी जुजा करके, नानीसें चार अंगुल हेता, अरु जानुसें चार अंगुल उंचा, ऐसा चोलपट्टाकों कूहणी योंसें धारण करी, संयती, कपिह्लादि दोषरहित, का योत्सर्ग करे. तिसमें यथाक्रमसें दिनके करे हुए अतिचारोंकों अपने हृदयमें धारके, नमस्कारसें पारके, लोगस्स पढके, संभासे पडिलेहके बैठे. बैठके शरीरके विना लागे बाहु युगल करके मुहपत्तिका पंचवीस अरु शरीरकी पंचवीस पडिलेहणा करे. अरु श्राविका पीठ, हृदय, शिर वर्जके पंदरा पडिलेहणा करे. पीठे ऊठके, बत्तीस दोष रहित पंचवीस आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वंदणा करे. अंग नमावी, दोनो हाथोंमें विधिसें मुखवस्त्रिका धरी, दिवसके अतिचारोंकों प्रगट करणके अर्थे आलोचना दंभक पढे. तद पीठे मुखवस्त्रिका, कट्यासन, पूठणा, वा पडिलेहके, वामा जानुं हेता और दाहिना जानु ऊंचा करके दोनो हाथोंमें मुखवस्त्रिका रक्कके, सम्यग्प्रतिक्रमणा सूत्र पढे. तद पीठें डव्य जावें ऊठके

“अपुच्छिमि” इत्यादि दंभक पढे. पीठे पांचादि साधु हों तो तीनकों स्वामणा करे, और सामान्य साधु हों तो प्रथम स्थापनाचार्यकों स्वामणा करके, पीठे तीन साधुकों स्वामावे, फेर कृति कर्म करे पीठे खंडा होके, मस्तके अंजलि करीके आयरिय उवधाय इत्यादि गाथा तीन पढके, सामायिक सूत्र कायोत्सर्ग दंभक पढे कायोत्सर्गमें चारित्राचारकी शुद्धिके अर्थे दो लोगस्स चिंते, तद् पीठे गुरुके पाखां पीठें पारके, सम्यक्त्व शुद्धिके वास्ते लोगस्स पढे पीठे सबलौए अरिहंत चेइआराहण कायोत्सर्ग करे ॥ एक लोग स्स चिंति पारके श्रुतकी शुद्धिके वास्ते “पुरकरवरदी” कहे, पीठें फेर एक लोगस्सका कायोत्सर्ग करी, सिद्धस्तव पढके, श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग करे, एक नमस्कार चिंते उसकों पारके, श्रुतदेवीकी शुद्ध पढे, वा सुणे. ऐसेही खेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करे, ति समें एक नमस्कार चिंते, वो पारके, खेत्र देवताकी शुद्ध कहे वा सुणे, पीठे पंच मंगल पढी, संमासा प डिलेही, वेठके मुखवस्त्रिका पडिलेहे, पीठें वांढणा देके, “इवामिअणुसणिं” ऐसैं कहे के, दो जानु होके, वर्धमानाद्धर स्वरसैं तीन शुद्ध पढे. पीठे शक्र



स्तव पढे, पीठे स्तोत्र पढे, पीठे आचार्यादि वांड़ी, प्रायश्चित्तकी शुद्धि वास्ते चार लोगस्सका कायोत्सर्ग करे, तद पीठें लोगस्स कहे. इति देवसि पडिक्क मणोकी विधि संपूर्ण ॥

इस विधिमें पडिक्कमणोकी आदिमें चार शुद्धि चैत्यवंदन करनी कही है. और श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग अरु इन दोनोकी शुद्धि कहनी कही है. इस लेखकों सम्यक्त्व धारी मानतें है. और मानतेथे, फेर मानेंगेनी परंतु मिथ्यादृष्टितो कनी नही मानेगा इस वास्ते सम्यक्दृष्टि जीवकों तीन शुद्धिका कदाग्रह अवश्य ठोड देना योग्य है.

तथा धर्मसंग्रह ग्रंथमें चैत्यवंदनाके जेद कहे है सो पाठ यहां लिखते है ॥ सा च जघन्यादि जेदा त्रिधा यद्नाप्यं नमुक्कारेण जहन्ना चिश्वंदण मद्यदंम शुद्ध जुअला ॥ पणदंम शुद्धि चउक्कग, अथ पणिहाणेहिं उक्कोसा ॥ १ ॥ व्याख्या ॥ नमस्कारेणांजलिबंधशिरोनमनादिलक्षणप्रणाममात्रेण यद्वा नमो अरिहंताणमित्यादिना अथवैकद्वयश्लोकादिरूपे नमस्कारपाठपूर्वकनमस्क्रियालक्षणेन कारणचूतेन जातिनिर्देशाद्बहुनिरपि नमस्कारैः क्रियमाणा जघन्या

स्वप्ना पाठक्रिययोरल्पत्वाद्द्वन्द्वना चवतीति गम्यं  
 ॥ १ ॥ णामश्च पंचधा ॥ एकांगः शिरसो नामे स्या  
 द्व्यंगः करयोर्द्वयोः ॥ त्रयाणां नामने त्र्यंगः करयोः शि  
 रसः तथा ॥ १ ॥ चतुर्णां करयोजान्वोर्नमने चतुरं  
 गकः ॥ शिरसः करयोजान्वोः पंचांगः पंचनामने ॥  
 ॥ २ ॥ - तथा दंमकश्चारिहंतचेश्त्राणमित्यादिश्चैत्य  
 स्तवरूपः स्तुतिः प्रतीता या तदंते दीयते तयोर्युगलं  
 युग्ममेते एव वा युगलं मध्यमा एतच्च व्याख्यानमि  
 ति कल्पगाथामुपजीव्य कुर्वति तद्यथा निस्सकडमनि  
 स्सकडे, वि चेऽए सवेहिं थुई तिन्नि ॥ वेलं वचेऽत्राण  
 विनाऊं एक्किक्किआ वावि ॥ १ ॥ यतो दंमकाव  
 साने एका स्तुतिर्दीयते इति दंमकस्तुतियुगलं च  
 वति ॥ २ ॥ तथा पंचदंमकैः शक्रस्तव १, चैत्यस्तव  
 २, नामस्तव ३, श्रुतस्तव ४, सिद्धस्तवारख्यैः ५, स्तुति  
 चतुष्टयेन स्तवनेन जयवीथ्यरायेत्यादिप्रणिधानेन  
 च उत्कृष्टा इदं च व्याख्यानमेके “तिन्निवा कट्टई जाव  
 थुईउ तिसिलोऽत्रा ॥ ताव तड अणुस्मायं कारणेण प  
 रेण वा” इत्येनां कल्पगाथां पणिहाणं मुत्त सुत्तीए  
 इति वचनमाश्रित्य कुर्वति वदनकचूर्णावप्युक्तं तं च  
 चेऽथ वंदणं जहन्न मधिमुक्कोस जेयतो तिविहं

जत्तो नणिञ्चं ॥ नवकारेण जहन्ना, दंमग शुऽ जुञ्चल  
 मधिमा नेया ॥ संपुन्ना उक्कोसा, विहिणा खलु वं  
 दणा तिविहा ॥ १ ॥ तच्च नवकारेण एकसिलोगोच्चार  
 रणतो पणामकरणेण जहणा तथा अरिहंतचेऽस्याण  
 मिञ्चाऽ दंमगं नणित्ता काउस्सगं पारित्ता शुऽ दिक्क  
 इति दंमगस्स शुऽए अ जुञ्चलेणं डुगेणं मधिमा न  
 णियं च कप्पे निस्सकडमनिस्सकडेवा वि चेऽए स  
 व्हिं शुऽ तिननेवेणं व चेऽस्याणि च नाऊं एक्केक्किया वा  
 वि ॥ १ ॥ तथा सक्कत्तयाऽ दंमग पंचग शुऽ चउक्क  
 पणिहाणं करण तो संपुन्ना एसाउक्कोसेति संघा  
 चार वृत्तौ चैतजाथा व्याख्याने बृहज्जाष्य संमत्या  
 नवधा चैत्यवंदना व्याख्याता तथा च तत्पाठलेशः  
 एतावता तिहाउ वंदणयेत्याद्यधारगाथागतनुशब्द सू  
 चितं नवविधत्वमप्युक्तं इष्टव्यं उक्तंच बृहज्जाष्ये चे  
 इवंदणा तिजेआ, जहन्नेआ मधिमाय उक्कोसा ॥ इक्किक्का  
 वितिनेया, जहन्नमधिमिअ उक्कोसा ॥ १ ॥ नवकारे  
 ण जहन्ना, इच्चाई जंच वस्मिआ तिविहा ॥ नवनेअणा  
 इमेसिं, नेअं उवलस्कणं तंतु ॥ २ ॥ एसा नवप्पयारा,  
 आऽणा वंदणा जिणमयंमि ॥ कालोचिअकारीणं, अ  
 णुग्गहत्तं सुहं सवा ॥ ३ ॥ इति गाथा बृहज्जाष्ये ए

ग नमुक्कारेणं चिश्वदणया जहन्नयजहन्ना बहुहिं न  
मुक्कारेहिं अनेआउजहन्नमविमिआ १ सच्चिअ सक  
बयंता जहन्न उक्कोसिआमुणेअवा २ नमुक्काराऽ  
चिई दंमएगधुऽ मप्रिम जहन्ना ४२ मंगलसकबयचि  
ऽ दंमगधुऽहिं मप्रमप्रिमिया ॥ ५॥ दंमगपंचगधुऽजुअ  
लपाटउ मप्रिमुक्कोसा ॥ ६३ ॥ उक्कोसजहन्ना पुण  
सच्चिअ सकबयाऽ पयंता ॥ ७ ॥ जा धुऽ जुअल डजे  
णं डुगुणिअचिश्वदणाऽ पुणो ४ उक्कोसमविमासा  
७ उक्कोसुक्कोसिआय पुणमेआ पणिवाय पणग पणि  
हाणतिअग धुत्ताऽ संपुष्सा ७५ सकबउअ इरिआ ड  
गुणिअचिश्वदणाऽ तह तिन्नि ॥ धुत्तपणिहाणसक  
उअअऽअ पंचसकथया ॥ ६ ॥ उक्कोसा तिविहा  
विहु कायवा सत्तिउ उचयकालं ॥ सेसा पुण बप्रेया  
चेऽअ परिवाडिमाऽसु ॥ इति ॥

॥ नवधा चैत्यवदनायंत्रकमिदम् ॥

जयन्य जंप्रणाममात्रेण यथा नमो अरिहंताणं इति पा  
धन्या १ तेन यद्वा एकेनश्लोकेन नमस्काररूपेण ॥१॥

जयन्य म  
ध्यमा. २ बहुजिनमस्कारैर्मंगलवृत्तापरान्निधानैः ॥ २ ॥

जघन्यो त्कृष्टा. ३	नमस्कार १ शक्रस्तव १ प्रणिधानैः ॥ ३ ॥
मध्यम जघन्या ४	नमस्काराः चैत्यस्तवदंमक । एकः स्तुतिरेका श्लोकादिरूपा इति ॥ ४ ॥
मध्यम म ध्यमा. ५	नमस्काराश्चैत्यस्तव एकः स्तुति द्वयं एकाधि कृतजिनविषया एक श्लोकंरूपा द्वितीया ना मस्तवरूपा यद्दानमस्काराः शक्रस्तव चैत्यस्त वौ स्तुतिद्वयं तदेव ॥ ५ ॥
मध्यमो त्कृष्टा. ६	ईर्यानिमस्काराः शक्रस्तवः चैत्यादिदंमक ४ स्तुति ४ शक्रस्तवः द्वितीयशक्रस्तवांताः स्तव प्रणिधानादिरहिताएकवार वंदनोच्यते ॥ ६ ॥
उत्कृष्ट ज घन्या. ७	ईर्यानिमस्काराः दंमक ५ स्तुतिः । ४ नमोऽनु जावंति जावंत १ स्तवन १ जयवीण ॥ १ ॥ ७ ॥
उत्कृष्टा मध्यम. ८	ईर्यानिमस्काराः शक्रस्तव चैत्यस्तव एवं स्तु ति ८ शक्रस्तव जावंति १ स्तव ३ जयवीय ८ ॥ ४ ॥ ८ ॥
उत्कृष्टो त्कृष्टा. ९	शक्रस्तव ईर्यास्तुति ४ शक्रस्तव स्तुतिः ४ शक्रस्तव १ जावंति १ जावंत, स्तव जयवी ८ शक्रस्तव ॥ ९ ॥

नाया ॥ चैत्यवंदनाके जघन्यादि तीन जेद है. य  
 ज्ञाप्यं ॥ नमुक्कारेण इत्यादि गाथा ॥ इसकी व्याख्या  
 ॥ नमस्कार सो अंजलि बांधि शिर नमावणे रूप ल  
 क्खण प्रणाममात्र करके अथवा नमो अरिहंताणं  
 इत्यादि पाठसें अथवा एक दो श्लोकादि रूप नम  
 स्कार पाठ पूर्वक नमस्क्रिया लक्खण रूप करणनूत  
 करके जातिके निर्देशसें बहुत नमस्कार करके करते  
 हुए जघन्याजघन्य चैत्यवंदन पाठ क्रियाके अल्प हो  
 नेसें होती है ॥ १ ॥ अरु दूसरा प्रणाम है सो पंच  
 प्रकारें है शिर नमावे तो एकांग प्रणाम दोनो हाथ  
 नमाए द्व्यंग प्रणाम, मस्तक अरु दो हाथके नमाव  
 णेसें त्र्यंग प्रणाम, दो हाथ अरु दो जानु के नमा  
 वणेसें चतुरंग प्रणाम, शिर, दो हाथ अरु दो जानु  
 यह पांचों अंगके नमावणसें पंचांग प्रणाम होता  
 है ॥ तथा दंभक अरिहंत येस्याणं इत्यादि चैत्यस्त  
 वरूप स्तुति प्रसिद्ध है जो तिसके अंतमें देते हैं. ति  
 न दोनुका युगल, ये दोनोही वा युगल यह मध्या  
 चैत्यवंदना है. यह व्याख्यान इस कल्पजाप्यकों आ  
 श्रित होके करते हैं ॥ तद्यथा निस्सकड, इत्यादि गा  
 था जिस वास्ते दंभकके अवसानमें एक थुइ जो

देते है ॥ इति दंमक स्तुति युगल होते है ॥ १ ॥  
 तथा पंच दंमक, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रु  
 तस्तव, सिद्धस्तव, इन पांचों दंमकों करके. और शु  
 ५ चार करके स्तवन कहना जयवीयराय इत्यादि प्र  
 णिधान करके यह उत्कृष्ट चैत्यवंदना, यह व्याख्यान  
 नी कोइ करते है तिन्निवा इत्यादि गाथा इस कल्प  
 की गाथा के वचनों और पणिहाणं मुत्तसुत्तीए इ  
 स वचनों आश्रित होके करते है ॥ ३ ॥

वंदनक चूर्णमें नी कहा है सो कहते है सो चैत्यवंद  
 ना जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट जेदसैं तीन प्रकारें है जि  
 स वास्ते कहा है नवकारेण जहन्ना इत्यादि गाथा  
 तिहां नवकार एक श्लोक उच्चारणसैं प्रणाम करणे  
 करके जघन्या चैत्यवंदना होती है ॥ १ ॥ तथा अ  
 रिहंत चेइयाणं इत्यादि दंमक कहके कायोत्सर्ग पा  
 रके शु५ देते है सो दंमक और शु५के युगल दोनु  
 करके मध्यम चैत्यवंदना होती है कल्पमें निस्सकड  
 इत्यादि गाथासैं कहा है ॥ १ ॥ तथा शक्रस्तवादि  
 दंमक पांच, और शु५ चार, और प्रणिधान पाठसैं  
 संपूर्ण उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है ॥ ३ ॥

तथा संघाचार वृत्तिमें इस गाथाके व्याख्यानमें बृह

ज्ञाप्यकी सम्मतिसें नवप्रकारकी चैत्यवंदना कही है। तथा च तत्पाठोलेशः॥ एतावता तिहाउ वंदणये त्याद्य द्वार गाथा गत तु शब्दसैं सूचित नव प्रकारसैं चैत्य वंदना जानने योग्य, दिखलाने योग्यहै ॥ उक्तंच वृह ज्ञाप्ये ॥ इसके आगें जो महान्नाप्यकी गाथा है ति सका अर्थ उपर कहा है तहांसैं जान लेना ॥ जब इसतरे जैनमतके शास्त्रोंमें प्रगट पाठ है तो क्या रत्नविजयधनविजयजीने यह शास्त्र नहीं देखे होंगे अथवा देखे होंगे तो क्या समझणमें नहीं आए होंगे समजे होंगे तो क्या ज्ञाप्यकार, चूर्णिकारादिकोंकी बुद्धि से अपनी बुद्धिकों अधिक मानके तिनके लेखका अनादर करा होगा आदर करा होगा तो क्या सत्य नहीं माना होगा सत्य नहीं माना तो क्या अन्यमतकी श्रद्धा वाले है जेकर अन्यमतकी श्रद्धा नहीं है तो क्या नास्तिक मतकी श्रद्धा रखते है. जे कर नास्तिक मतकी श्रद्धा नहीं रखते है तो क्या मारवाड माजवादि देशोंके श्रावकोंसैं कोऽ पूर्व जन्मका वेर जाव है? जिस्से ज्ञाप्यकार, चूर्णिकारादि हजारो पूर्वचार्योंका मतसैं विरुद्ध जो तीन युष्का कुपंथ चलाके



तिनकी श्रद्धाकुं फिरायके उनोका मनुष्यनव बिगाड नेकी श्वा रखते है. ?

अहो नव्यजीवो हम तुमसे सत्य कहते हैंकि जे कर तुम नाष्यकार, चूर्षिकारादि हजारों पूर्वाचार्योंके माने हुए चार युष्के मतकों उथापोगे तो निश्चयसे दीर्घ संसारी और अशुनगति गामी होवेंगे. जेकर रत्नविजयजीके चलाए तीन युष्के पंथकों न मानोगे और पूर्वाचार्योंके मतकों श्रद्धोगे, तिनके कहे मुजब चलोगे तो निश्चेंही तुमारा कल्याण होवेगा इसमें कुञ्जनी क्वचित् मात्र संशय जानना नहीं. किंबहुना ॥

तथा धर्मसंग्रह ग्रंथमें देवसि पडिक्कमणेकी विधि का ऐसा पाठ लिखा है सो यहां लिखते हैं ॥ पूर्वाचार्य प्रणीताः गाथाः ॥ पंचविहायार विसुद्धि, हेउ मिह साहु सावगो वावि ॥ पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ श्को वि ॥ १ ॥ वंदित्तु चेश्याई, दाउं च उराइ ए खमासमणे ॥ नूनिहिअसिरोसयजा, श्चारे मिह्वा डुक्कडं देइ ॥ २ ॥ सामाइअ पुव मिह्वा मि, ठाउं काउस्सग्गमिच्चाइ ॥ सुत्तं नणिअ पलंबिअ, च्छुअ कुप्पर धरिअ पहिरणउ ॥ ३ ॥ घोडगमाई अ दोसेहिं, विरहि अंतो करइ उस्सग्गं ॥ नाहिअहोक्काणुं, चउरंगुल

षवित्र कडिपट्टो ॥४॥ तन्नय धरेऽ हित्र्यए, ऊहकर्म  
 दिणकएत्र अर्श्वारे ॥ पारिउ एमोक्कारेण, पढऽ च  
 उवीस थयदंमं ॥५॥ संनासगे पमवित्र, उवविसित्र  
 अलग्ग वित्रय वाहुळुउं ॥ मुहणं तगंच कायं,  
 पेहेए पंचवीस इह ॥ ६ ॥ उच्छिअच्छिउं सविणयं,  
 विहिणा गुरुणो करेऽ किऽ कम्मं ॥ वत्तीसदोसरहित्र्यं,  
 पणवीसावस्सगविसुद्धं ॥७॥ अह सम्म मवणयंगो,  
 करजुग विहि धरिअ पुत्ति रयहरणो ॥ परिचिंतित्थ अ  
 इअरें, जहकम्मं गुरु पुरोविअडे ॥ ८ ॥ अह उववि  
 सित्तु सुत्तं, सामाऽअ माऽअ पढिअ पयउं ॥ अणुधि  
 उम्हि इच्चाऽ, पढऽ इहउं छिउं विहिणा ॥ ९ ॥ दाऊण  
 वंदणं तो, पणगाऽ सुऊऽ सुखामए तिन्नि ॥ किऽ क  
 म्मं किरिआयरिअ, माऽ गाहातिगं पढऽ ॥१०॥ इअ  
 सामाऽअ उस्सग्ग, सुत्त सुच्चरिअ काउस्सग्ग ठिउं ॥  
 चितऽ उऊोअडुगं, चरित्त अइअर सुद्धिकए ॥ ११ ॥  
 विहिणा पारिअ सम्मत्त, सुद्धि हेउंच पढऽ उऊोअं ॥  
 तह सबलोअ अरिहंत चेइअराहणुस्सग्गं ॥ १२ ॥  
 काउ उऊोअगर, चिंतित्थ पारेऽ सुद्धसंमत्तो ॥ पुक्कर  
 वरदीवद्धे, कद्धऽ सुअ सोदण निमित्तं ॥१३॥ पुण प  
 ण वीसुस्तासं, उस्सगं कुणऽ पारए विहिणा ॥ तो

सयल कुसल किरिआ, फलाण सिद्धाण पढइ थयं  
 ॥ १४ ॥ अह सुअ समिद्धि हेवं, सुअ देवीए करेइ उ  
 स्सग्गं ॥ चिंतेइ नमोक्कारं, सुणइ व देईव तीइ थुयं ॥ १५ ॥  
 एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइं ॥ पढि  
 ऊण पंच मंगल, सुवविसइ पमव संमासे ॥ १६ ॥ पु  
 व विहिणेव पेसिअ, पुत्तिं दाऊण वंदणे गुरुणो ॥ १७ ॥  
 हामो अणुसत्ति, जणिउ जाणुहिं तो ठाई ॥ १८ ॥  
 गुरु थुई गहणे थुइत्तिस्सि, वध्माणकरस्सरो पढई ॥  
 सक्कळयळवं पढिअ, कुणइ पढित उस्सग्गं ॥ १९ ॥  
 एवंता देवसियं ॥

जाषाः—इस उपरले विधिमें देवसि पडिक्रमणोमें  
 प्रथम चैत्यवंदना चार थुइसैं करणी पीठें अंतमें थु  
 त देवता और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा औ  
 र तिनकी थुइउ कहनी ऐसे कहा है ॥

यह धर्मसंग्रह प्रकरण श्रीहीरविजयसूरिजीके  
 शिष्यके शिष्य श्रीमानविजय उपाध्यायजीका रचा हु  
 वा है और सरस्वतीने जिनकों प्रत्यह होके न्याय  
 शास्त्र विद्या और काव्य रचनेका वर दीना. अरु  
 जिनकों काशीमें सर्व पंडितोंने मिलके न्यायविशार  
 द न्यायाचार्यकी पदवी दीनी, और जिनोंने अत्य

दुत ज्ञानगर्जित ऐसे नवीन एक सौ ग्रंथ रचे हैं, और जिनोने अनेक कुमतियोंका पराजय किया, और डु कर किया करी, पट्टशास्त्र तर्कालंकारका वेत्ता, ऐसे श्रीमदुपाध्याय श्रीयशोविजयगणीजीने जिस धर्मसंग्रह ग्रंथकूं शोध्या है.

अवजानना चाहीयंकि ऐसे ऐसे महान्पुरुषोके वचन जो कोई तुल्लुबुद्धि पुरुष न माने तो फेर ऐसे तुल्लुबुद्धिवालेका वचन मानने वालेसैं फेर अधिक मूर्खशिरोमणि किसकूं कहना चाहियें ?

हमकूं यह बडा आश्चर्य मालुम होता है के रत्न विजयजी अरु धनविजयजी अपनी पट्टावलीमें श्री जगच्चंडस्वरिजी तपा विरुदवालोंकूं अपना आचार्य लिखते हैं, तद पीठें देवस्वरि, प्रजस्वरि, अर्थात् विजयदेवस्वरि. विजयप्रजस्वरि प्रमुख लिखते हैं, अरु लोकोंके आंग तपगह्वका नाम तो नहीं लेतें हैं. कोइ पूठें तिनकूं अपने गह्वका नाम सुधर्मगह्व बतलाते हैं ऐसा कहनेसैं तो इनोकी बडी धूर्तताइ सिद्ध होती है क्योंकि यह काम सत्यवादियोंका नहीं है. जेकर एऊ लिखना और दूसरा सुखसैं बोलना ? और तपगह्वकी समाचारी जो श्रीजगच्चंडस्वरि, देवेंडस्वरि

धर्मघोषसूरि तथा तिनकी अवह्वित्त परंपरासैं चलती है, तिसकों ढोडकें स्वकपोलकल्पित समाचारीकों सुधर्मगह्वकी समाचारी कहनी यहनी उत्तम जनोके लक्षण नही है ॥

जना. और जिनकों अपने पट्टावलीमें नाम लिखकर अपना बडे गुरु करके मानना, फेर तिनोकीही समाचारीको जब जूठी माननी तबतो गुरुनी जूठे सिद्ध हूवे ? जब रत्नविजयजी धनावजयजीका गुरु जूठे थें तबतो इन दोनोकी क्या गति होवेगी ?

तथा नवांगी वृत्तिकार जो श्रीअनयदेवसूरिजी तिनके शिष्य श्रीजिनवद्वजसूरिजीने रची हुई समाचारीका पाठ लिखते है ॥ पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं करेइ पारए विहिणा ॥ तो सयल कुसल किरिया, फलाणसिद्धाणं पढइ थयं ॥ १४ ॥ अह सुय समिद्धि हेउं, सुयदेवीए करइ उस्सग्गं ॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ देइ तिण शुइ ॥ १५ ॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं करेइ सुणइ देइ शुइ ॥ पढिऊण पंचमंगल, सुव विसइ पमज्जा संदासे ॥ १६ ॥ इत्यादि ॥

जाषा ॥ श्रीजिनवद्वजसूरि विरचित समाचारिमें प्रथम पडिक्रमणोमें चार शुइसैं चैत्यघंदना करनी

पीठे प्रतिक्रमणके अवसानमें श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनकी शुश्यां कहनी, यह कथन पंदरावी अरु सोलावी गायामें करा हे. जब श्री अन्नयदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारक के शिष्य श्रीजिनवद्वनसूरिजीकी बनवाइ समाचारीमें पूर्वोक्त लेख है तब तो श्रीअन्नयदेवसूरिजीसें तथा आगु तिनकी गुरु परपरासें चार शुशुकी चैत्य वंदना और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी शुशु कहनी निश्चयही सिद्ध होती है, तो फेर इसमें कुठनी वाद विवादका ऊ गडा रह्या नही, इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धन विजयजी तीन शुशुका कदाग्रह ठोड देवे, तो हम इनेकों अल्पकर्मा मानेंगे ॥

तथा वृहत्खरतर गठकी समाचारीका पाठ लिखते हैं ॥ पुत्रोद्धिंगीया पडिकमण समाचारी पुणए सा ॥ सावउ गुरुहिसमं, इक्कोवा जावति चेइयाइं ति गाहा ॥ डुगशुत्तिपणिहाण वयं चेइयाइं वंदितु चउरा इ खमासमणेहिं आयरियाइं वदिय नूनिहियसिरो सबस्स देवसिय इवाइं डंमगेण सयलाइयार मिनुक्क डं दाउं उछिय सामायिय सुत्तं नणिउं इवामि वा

इत्तं काउस्सग्गमिञ्चाइ सुत्तं नणिय पलंविच्य जुय कु  
 प्पर धरियनानिअहो जाणुत्तं चउरंगुल उविय क  
 डिय पट्टो संजइ कविष्ठाइ दोसरहिअं काउस्सग्गं जंका  
 उं जहक्कमं दिणकए अइयारे हियए धरिय नमोक्कारे  
 ए पारिय चउवीसं पडिलेहणाउ काउं काए वितत्ति  
 याउ चेव कुणइ । साविया पुण पिठि सिरहिययवयं  
 पन्नरसकुणइ । उठिय वत्तीसदोसरहियं पणवीसा  
 वस्सय मुठं किइ कम्म काउं अणयंगो करजुय  
 विहि धरिय पुत्तीदेवसियाइयाराणं गुरुपुरउ वियड  
 एत्तं आलोयण दंमगं पढइ । तउ पुत्तीए कठीस  
 णं पाउंठणं वा पडिलेहिय वामं जाणु हिष्ठा दाहि  
 णं चउत्तं काउं करजुय गहिय पुत्तिसम्मं पडिक्कमण  
 सुत्तं नणइ ॥ तउ इव जावुठित्तं अप्पुठित्तमि इञ्चाइ  
 दंमगं पठित्ता बंदणं दाउं पण गाइ सुजइ सुत्तिनि  
 खामित्ता सामन्न साहू सुपुण उवणायरिएण समं  
 खामणं काउं तउ तिन्नि साहू खामित्ता पुणो की क  
 म्मं काउं उड्डित्तं सिर कयंजली आयरियउवप्पाए  
 इञ्चाइ गाहातिगं पठित्ता सामाइयसुत्तं उस्सग्गदंमगंच  
 नणिय काउस्सग्गे चारित्ताइयारसुद्धिनिमित्तं उवो  
 यडुगं चिंतेइ । तउ गुरुणा पारिए पारित्ता संमत्तसु

द्विहेतुं उद्योगं पठिय सत्रलोय अरहंतचेश्याराहणु  
 स्सगं काठं उद्योगं चिंतिय सुय सोहि निमित्तं पुस्क  
 रवरदीवट्टं कट्टिय पुणो पणवीसुस्सासं काउस्सगं  
 काठं पारिय सिद्धव पठित्ता सुयदेवयाए काउस्स  
 ग्गे नमोक्कार चितिय तीसे शुइ देइ सुणेइवा ॥ एवं  
 खित्तदेवयाए वि काउस्सग्गे नमोक्कारं चिंतिकण पा  
 रिय तनुइ दाउं सोवा पंचमंगलं पठिय संभासए प  
 मज्जिय उवविसिय पुवं व पुत्तिं पडिय वदणं दाउं  
 इवामि अणुसंघिंति नणिय जाएहिंवाउं वट्टमाण  
 रकरस्सरा तिन्निशुइउ पडिय सक्कवयं सुत्तंच नणिय  
 आयरियाई वंदिय पायचित्तविसोहणउं काउस्सगं  
 काठं उद्योग चउक्क चित्ति इत्ति ॥ देवसिय पडि  
 क्कमणविही ॥

इस पाठकी जापा—जैसे विधिप्रपाके पाठकी ह  
 म यही ग्रंथमें ऊपर कर आए है तैसे जान लेनी.  
 इस पाठमेनी प्रतिक्रमणोमें चार शुईसं चैत्यवंदना क  
 रनी और श्रुतदेवता तथा क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग  
 अरु तिनकी शुईयों कहनी कही है.

तथा प्रतिक्रमणा सूत्रकी लघुवृत्तिमें श्रीतिलका  
 चायें चार शुईमें चैत्यवदना करनी लिखी है तथा



च तत्पाठः ॥ एष नवमोऽधिकारः एतास्तिस्त्रः स्तुतयो गणधरकृतत्वान्नियमेनोच्यंते आचरणयान्यात्रपि ॥ तद्यथा उच्यंते इत्यादि पाठसिद्धा नवरं निसिद्धीयन्ति संसारकारणानि निषेधान्नैषेधिकी मोक्षः । दशमोऽधिकारः ॥ तथा चत्तारीत्यादि एषापि सुगमा नवरं परममठनिष्ठियञ्च परमार्थेन न कल्पनामात्रेण निष्ठिता अर्था येषां ते तथा एकादशोऽधिकारः अथैवमादितः प्रारभ्य वंदितजावादिजिनः सुधीरुचितमिति वैयावृत्त्यकराणामपि कायोत्सर्गार्थमिदं पठति वैयावृत्त्यकराणामित्यादि वैयावृत्त्यकराणां गोमुखचक्रेश्वर्यादीनां शांतिकराणां सम्यग्दृष्टिसमाधिकराणां निमित्तं कायोत्सर्गं करोमि अत्र च वंदणवक्तियाए इत्यादि न पठ्यते अपितु अन्नन्नवससीएणमित्यादि तेषामविरतित्वेन देशविरतिन्योप्यधस्तनगुणस्थानवर्तित्वात् श्रुतयश्च वैयावृत्त्यकराणामिव । एष द्वादशोऽधिकारः ॥

नाथा ॥ यह नवमा अधिकार पूरा हुआ, यह पूर्वोक्ता सिद्धाणं ॥ १ जो देवाणं ॥ २ इक्कोवि ॥ ३ ये तीन श्रुतियां गणधरकी करी हुई है इस वास्ते निश्चै कहनी चाहीयें, और आचरणासं अन्य

नी कहीयें है, सो यह है. उच्यंत इत्यादि पाठ सि  
 ५ है. नवरं निसिद्दीयत्ति० संसारकारणनिपेधात्  
 नैपेधिकी मोक्ष. यह दशमोधिकारः ॥ तथा चत्वारि  
 इत्यादि यहनी सुगम है. नवरं परमठ० परमार्थ  
 करके परंतु कल्पना मात्रसें नही निष्ठितार्था दूआ  
 है इनको यह एकादशमोधिकारः ॥ अथ आ  
 दिमें आरंभके वांटे है जावजिनादिक अथ उचित  
 प्रवृत्तिके लीये यह पाठ पढे ॥ “ वेयावच्चगराणमि  
 त्यादि ” वैयावृत्त्यके करनेवाले जो गोमुख यह,  
 चक्रेश्वर्यादीकों जो शांतिके करनेवाले, सम्यग्दृष्टि  
 समाधिके करनेवाले है इन हेतुयोंसे तिनका कायो  
 त्सर्ग करता हूं ॥ इहां वंदणवक्तियाए इत्यादि पाठ न  
 कहना अपितु अन्नवृससीएणमित्यादि पाठ कहना.  
 तिनको अविरति होनेसे देशविरतिसंज्ञी नीचले गु  
 णस्थानमें वर्त्तनसें वैयावृत्त्यकरनेवालोंको सुना है.  
 यह वारमा अधिकार है. ईस पाठमेनी चार शुईसें  
 चेत्यवदना करनी कही है.

तथा अणहिलपुर पाटणके फोफलीये वाडेका  
 जांभागाग्में श्रीअन्नयदेवसूरिकृत समाचारी है तिस  
 का पाठ निखतं है ॥ प्रव्रजितेन चोन्नयकालं प्रतिक्र

मणं विधेयमतस्तद्विधिः । सच साधुश्रावकयोरेक एवे  
ति श्रावकसमाचार्यां पृथक् नोक्तः, तत्र रात्रिकस्य  
यथाश्रिया कुसुमिण सग्गो, जिणमुणिवंदण तहेव  
सञ्जाउ ॥ सवस्सवि सक्कथउ, तिन्निय उस्सग्ग काय  
वा ॥ १ ॥ चरणे दंसणनाणे, डुसुजोगुद्योतय तई  
अईयारा ॥ पोत्तीवंदण आलोय, सुत्तं वंदणय खाम  
णयं ॥ २ ॥ वंदणमुस्सग्गो इह, चिंतएकिं अहं तवं  
काहं ॥ ठम्मासादेगदिणा, इहाणिजा पोरिसि नमो वा  
॥ ३ ॥ मुहपोत्ती वंदण प,च्चकाण अणुसठि तह  
शुई तिन्नि ॥ जिणवंदण बहुवेला, पडिलेहण राइपडि  
क्रमणं ॥४॥ अथ दैवसिकस्य ॥ जिणमुणिवंदण अ  
इया, रुस्सग्गो पोत्तिवंदणा लोए ॥ सुत्तं वंदण खामण,  
वंदन तिन्नेव उस्सग्गा ॥ १ ॥ चरणे दंसणनाणे, उद्योया  
दोणि एक एक्या य ॥ सुयखेत्तदेवउस्स, ग्गो पोत्तिय  
वंदणशुईं शुत्तं ॥ २ ॥ पुणरवि खमासमण पुवं इहकारि  
तुम्हेम्हं संमत्त सामाइय सुंयसामाइयस्स रोवणत्थं  
नंदिकरावणियं देवे वंदावेह ॥ गुरु वंदेहत्ति जणिता  
तं वामपासे उवित्ता तेण समं वट्ठंति आहिं ॥ शुईहिं  
देवे वंदावेइ सिद्धय पयंतेय सिरिसंति १ संति २  
पवयण ३ जवण ४ खित्ताय देवयाण ५ तहा वेया

वज्रगराण्य ६ उस्सग्गा हुंति कायवा केवलं शांति  
नाथाराधनार्थं कायोत्सर्गः सागरवरगंजीरेत्यंत लोग  
स्सुद्योगगराचिंतनतः सप्तविशत्युद्वासमानः कार्यः ।  
शेषेषु तु नमस्कारचिंतनं क्रमेण स्तुतयः श्रीमते शां  
तिनाथायेत्यादि ॥ १ ॥ उन्मृष्टरिष्टेत्यादि ॥ २ ॥ यस्याः  
प्रसादेत्यादि ॥ ३ ॥ ज्ञानादिगुणेत्यादि ॥ ४ ॥ यस्याः  
क्षेत्रं समाश्रित्येत्यादि ॥ ५ ॥ सर्वे यद्वांत्रिकेत्यादि  
॥ ६ ॥ तउ एमोक्कारं कट्टिय जाणु सुजवित्र सक्क  
उउ अरिहाणाइ उोत्तं च जणिजइ जयवीयरायेत्या  
दिगाथे च इतीयं प्रक्रिया सर्वनंदीषु तुल्यत्वे तत्समो  
च्चारणत्वं चेइय वंदणाणंतरं खमासमणपुवं जणेइ ॥

इन पाठोंका जावार्थः—राइपडिक्कमणेके अंतमें  
चार घुइसैं चैत्यवंदना करनी कही है. हम ऊपर  
जितने शास्त्रोंकी साक्षीसैं देवसि पडिक्कमणेका वि  
धि लिख आए है. तिन सर्व ग्रंथोंमें राइ पडिक्कम  
णेके अंतमें चार घुइसैं चैत्यवंदना करनी कही है.  
सेसंउन्नयकालमिति महाज्ञाप्यवचनप्रामाण्यात् ॥

तथा श्रीअन्नयदेवसूरिने तथा तिनके गिप्यने दे  
वसि पडिक्कमणेकी आदिमें चार घुइसैं चैत्यवंदना  
करनी कही है और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका का

योत्सर्ग करना तथा तिनकी शुद्ध कहनी कही है ॥

तथा सम्यक्त्व देशविरत्यादिके आरोपणकी चैत्य वंदनामें प्रवचन देवी, जुवन देवता, खेत्र देवता, वे यावच्चगराणं इनके कायोत्सर्ग और इन सर्वोंकी पृथग् पृथग् शुद्ध कहनी कही है. इस समाचारीके अंत श्लोकमें ऐसे लिखा हैके श्रीअन्नयदेवसूरिके राज्यमें यह समाचारी रची गई है. और इसी पुस्तककी समाप्तिमें ऐसे लिखा है इति श्रीखरतरगङ्गे श्रीअन्नयदेवसूरिकृता समाचारी संपूर्णा ॥ यह पुस्तककी हमारे पास है, किसीकों शंका होवे तो देख लेवे ॥

जैसे इस समाचारीमें विधि लिखि है, तैसेही श्रीसोमसुंदरसूरिकृत, श्रीदेवसुंदरसूरिकृत, श्रीयशोदेवसूरिके शिष्यके शिष्य श्रीनरेश्वरसूरिकृत समाचारीयोंमें तथा श्रीतिलकाचार्यकृत विधिप्रपा समाचारीमें ऐसा लेख है सो यहां लिख दिखाते हैं ॥

श्रीतिलकाचार्यकृत सैतीस द्वारकी विधिप्रपा समाचारीका पाठ ॥ पुनः गृहीह्रमा० इञ्जाकारेणतुप्रे अम्हं सम्यक्त्व० श्रुत० देशवि० सामायिक आरोपणं गुरु० आरोपणा गृहीह्रमा० इञ्जाकारेण तुप्रे अम्हं सम्यक्त्व० श्रुत० देश० सामायिका रोपणं निंदिकरज

गुरु० करेऽमो गृहीऽञ्जं ॥ द्दमा० इत्थाकारेण तुप्रे  
 अम्ह सम्य० श्रु० देश० सामाधिकारोपणञ्जं नदिकरणञ्जं  
 चेऽयाइ वंदावेह ततः समुञ्जाय गुरुः समवसरणाग्रे  
 स्थित्वा गृहिणं वामपार्श्वे निवेद्य ईर्यापथिकीं प्रति  
 क्रमय्य प्रार्थितं चैत्यवदनादेशं दत्त्वा गुरुः ससंघस्तेन  
 सह चैत्यवदनां करोति ॥ तद्यथा ॥ समवसरणम  
 ध्ये रत्नसिंहासनस्थान्, जगति विजयमानान् चामरे  
 र्वाज्यमानान् ॥ मनुजदनुजदेवैः संततं सेव्य  
 मानान्, शिवपथकथकांस्तानर्हतः संस्तुवेऽहं ॥ १ ॥  
 शिवयुवतिकिरीटान् शुष्कडुष्कर्मकंदान्, विमलतम  
 समुद्यत्केवलज्ञानदीपान् ॥ अणुमनुजसुदेहाकारतेजः  
 स्वरूपान्, अविगतपरमार्थान् नौमि सिद्धान् कृता  
 र्थान् ॥ २ ॥ अतुलतुलितसत्त्वान् ज्ञातसिद्धान्तत  
 त्वान्, चतुरतरगिरस्तान् पंचधाचारशस्तान् ॥ प्रथित  
 गुण समाजान् नित्यमाचार्यराजान् प्रणमत युगमु  
 ख्यान् सक्रियावद्भ्रसख्यान् ॥ ३ ॥ प्रणयिषु पठनाया  
 न्युद्यतेषु प्रकामं वितरत इह सौत्री वाचनामाग  
 मस्य ॥ अगणितनिजकष्टान् कामिताचीष्टसिद्धान्  
 सरससुगमवाचो वाचकान् संस्तवीमि ॥ ४ ॥ दश  
 विधयतिथमाधारचूतान् प्रचूतान् श्रमणशतसहस्रान्

श्रमान् स्वक्रियायां ॥ सविनयमतिनक्तयान्युद्धसञ्चित  
 रंगः, सततमपि नमामि कामदेहांस्तपोनिः ॥ ५ ॥  
 चतुर्गात्रं चतुर्वक्रं, चतुर्धा धर्मदेशकं ॥ चतुर्गतिविनि  
 र्मुक्तं, नमामि जिनपुंगवं ॥ ६ ॥ इत्यादि नमस्का  
 रान् शक्रस्तवं च नणित्वा, अरिहंत चेश्याणं ० लोण  
 स्त उद्योगरे ० ॥ पुस्करवरदीवद्वे ० सिद्धाणं बुद्धाणं ०  
 कायोत्सर्गान् कृत्वा ततः शांतिनाथ आराहणं करे  
 मि काउस्सग्गं वंदणवत्तीयाए ० अथ सुयदेवयाए  
 सासण देवयाए सवेसिं वेयावच्चगराणं अणुधाणाव  
 णं करेमि काउस्सग्गं अन्नं उससिएणं कायोत्स  
 र्गांश्च ४ इत्वा तत्र शांतिनाथाराधनार्थं कायोत्सर्गे  
 सागरवरगंजीरांतचतुर्विंशतिस्तवं शेषकायोत्सर्गसप्तके  
 श्वासोह्वासं पंचपरमेष्ठिनमस्कारं विचिंत्य नमोर्हत्सि  
 द्वाचार्योपाध्यायसर्वसाधुन्यः इति नणनरहितं चतु  
 र्विंशतिस्तवश्रुतस्तवकायोत्सर्गांते स्तुतिघ्नं तन्नणन  
 पूर्वकं चापरकायोत्सर्गांते स्तुतिषट्ठं गुरुः स्वमेव नण  
 ति ताश्चेमाः स्तुतयः । सत्केवलदंष्ट्रं धर्मद्विधारं श्री  
 वीरवराहं प्रातर्नुतवद्यं ॥ १ ॥ नवकांतारनिस्तार  
 सार्थवाहास्तु देहिनाम् ॥ जिनादित्या जयंत्युच्चैः  
 प्रनातीकृतदिङ्मुखाः ॥ २ ॥ तोयायते मौर्ख्यमला

पनीतो पद्मायते श्रीगणनृत्सरःस्तु ॥ राहूयते यत्कुम  
 तीष्ठुविवे तज्जैनवाक्यं जयति प्रजाते ॥ ३ ॥ किमिय  
 ममलपद्मं प्रोद्दहंती करेण प्रकटविकचपद्मे संश्रिता  
 श्रीः सितांगी ॥ नहि नहि जिनवीरहीरनीरेश्वरस्य श्रुत  
 सितमणिमालातान्निजाते श्रुतांगी ॥ ४ ॥ यदि चाप  
 राण्हे नदिः क्रियते तदा एतासां स्तुतीनां स्थाने  
 श्मा. स्तुतयो नएनीया. ॥ तद्यथा ॥ नमोस्तु वर्ध  
 मानाय-स्पर्धमानाय कर्मणा ॥ तज्जयावाप्तमोहाय  
 परोहाय कुतीर्थिनाम् ॥ १ ॥ येषां विकचारविद  
 राज्या ज्याय. क्रमकमलावलिं दधत्या ॥ सदृशैरिति  
 सगतं प्रशस्यं कथित संतु शिवाय ते जिनैः ॥ २ ॥  
 कपायतापादितजतुनिर्वृतिं करोति यो जैनमुखांबु  
 दोक्त. ॥ स शुक्रमासोन्नववृष्टिसंनिचो दधातु तुष्टिं  
 मयि विस्तरौ गिराम् ॥ ३ ॥ स्वसितसुरनिगंधालग्रचं  
 गीकुरगं मुखशगिनमजस्र विज्रती या विज्रति ॥  
 विकचरुमलमुद्धैः सा त्वचित्यप्रजावा सकलसुखवि  
 धात्री प्राणिनां सा श्रुतांगी ॥ ४ ॥ शांतिनाथादि  
 स्तुतिचतुष्टयं च पूर्वाण्हापराण्हायोरप्येकमेव ॥ शांति  
 नाथ. स व. पातु यम्य सम्यक् सनाजनं ॥ कृत क  
 रोति नि शंभं त्रेलोक्य शांतिनाजनम् ॥ १ ॥ यत्प्रसादा



द्वाप्यंते पदार्थाः कल्पनां विना ॥ सा देवी संविदे  
नः स्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ १ ॥ या पाति शासनं  
जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी ॥ सान्निप्रेतसमृद्धयर्थं जूया  
च्छासनदेवता ॥ २ ॥ ये ते जिनवचनरता वैयावृ  
त्त्योद्यताश्च ये नित्यं ॥ ते सर्वे शांतिकरा न्वंतु सर्वा  
णि यद्वाद्याः ॥ ४ ॥

इस उपर जे पाठमें श्रुतदेवता, शासनदेवता, वेयावञ्चकराणं इन तीनोका कायोत्सर्ग और ती नोकी तीन शुश्यां कहनी कही है. इसीतरें सर्वग ङ्गोंकी समाचारीयोंमें यही रीती है. और प्रतिष्ठा कल्पोमेंनी पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग अरु शुश्यां कहनीयां कही है.

यहा कोइ रत्नविजयजी अरु धनविजयजी प्रश्न करते हैं के प्रव्रज्याविधिमें और प्रतिष्ठाविधिमें तो हम पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग अरु शुशु कहनी मानते हैं. परंतु प्रतिक्रमणोमें नही मानते.

उत्तरः—प्रतिक्रमणोमें वेयावञ्चगराणं, श्रुतदेवता, देवदेवता इन तीनोके कायोत्सर्ग, अरु शुशुयों कहनी यह सब बात शंकासमाधानपूर्वक अनेक शास्त्रोंकी साह्मीसैं हम उपर लिख आए हैं. जेकर रत्नविजय अरु

धनविजयजीकों पूर्वोक्त सुविहित आचार्योंका लेख प्रमाण नहीं होवे तो फेर धर्मकी प्रवृत्ति जो कुछ चला नी वो सब पूर्वोक्त आचार्योंकी परंपरासेही चलतीहै तिसकोंनी गोटके जिसमाफक अपनी मरजीमें आवे तिसमाफक विचारे जोले जीवोंके आगे चलानेकों कुछ नी मेनत तो नहीं पडती; परंतु नुकसान मात्र इतनाही होता हैकि जैसे करनेसे सम्यक्त्वका नाश हो जाता है. यह बात कोइनी जैनधर्मो होवेगा सो अवश्य मंजूर रहेगा फेर जादा क्या कहना.

फेरनी एक बात यह हैकि जब पडिक्रमणमें पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग करणसें इनकों पाप लगता है? तो क्या प्रव्रज्याविधिमें और प्रतिष्ठाविधिमें इन पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग करनेसें इनकों पाप नहीं लगता होवेगा? यह कहना सत्य हैकि “आंधे चूहे थोथे धान, जैसे गुरु तैसे यजमान”, इसि माफक है. यह अपहृपाति सम्यक्दृष्टि निश्चय करेगा. मारवाड अरु मालवेके रहेने वाले कितनेक जोले भावक तो जैसे हैकि जिनोने किसि बहुश्रुतसें यथार्थ श्रीजिनमार्गनी नहीं सुना है तिनोनों कुछु क्तिसें श्रीहरिजइसूरियादिक हजारो आचार्यों जो

जैनमतमें महाज्ञानी थे तिनके सम्मत जो चार शुद्ध श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणेरूप मत है तिसकों उठापके स्वकपोलकल्पित मतके जालमें फसाते है. यह काम सम्यग्दृष्टि अरु जवनी रुयोंका नही है.

तथा रत्नविजयजी, धनविजयजीने श्रीजगच्चंडसूरि जीको अपना आचार्यपट्ट परंपरायमें माना है. और तिनके शिष्य श्रीदेवेंडसूरिजीने चैत्यवंदननाथ्यमें और तिनके शिष्य श्रीधर्मघोष सूरिजीने तिसनाथ्यकी संघाचार वृत्तिमें चार शुद्धसे चैत्यवंदनाकी सिद्धि पूर्वपद्ध उत्तर पद्ध करके अही तरेंसे निश्चित करी है, जिसका स्वरूप हम उपर लिख आए है. तिसकों नही मानते इस्से अपनेही आचार्योंको असत्यनाथी मानते है, तो फेर रत्नविजयजी, धनविजयजी यहनी सत्यनाथी क्यों कर सिद्ध होवेगें ?

जे कर रत्नविजयजी अरु धनविजयजी अंचलगड्डके मतका सरणा लेते होवेगे तो सोनी अयुक्त है. क्योंकि अंचलगड्डके मतवाले तो चारोंही शुद्ध नही मानते है, वे तो लोगस्स, पुरकरवर, सिद्धाणं बुद्धाणं, यह तीन शुद्धकों मानते है. अन्य नही. यह

वात अंचलकृत शतपदी ग्रंथके १४-१५-१६-प्र  
श्रोत्ररमें देख लेनी.

तथा तिलकाचार्यकृत विधिप्रपाका पाठ ॥ अथ  
साधुदिनचर्याविधिः ॥ इह साधवः पाश्चात्यरात्रिघटि  
काचतुष्टयसमये पंचपरमेष्ठिनमस्कारं पठंतः समु  
त्याय 'किं मे कडं किं च मे किञ्चमे संकंसकण्डिद्यं समा  
य समि किंमे परोपासइ किंच अथवा किंचाहं खलि  
यं न विवक्षयामि ॥१॥' इत्यादि विचिंत्य ईर्यापथिकीं  
प्रतिक्रम्य चैत्यवंदनां कृत्वा समुदायेन कुस्वप्नइस्वप्न  
कायोत्सर्गं गुरुन् वंदित्वा यथाद्येष्टं साधुवंदनं । श्राव  
काणां तु मिथो वांदुं न एनं ततः कृणं आदेशादाने  
न स्वाध्यायं विधाय ततः कृमा० इत्त० पडिक्कमणइताउं  
इत्तं कृमा० सवस्स विराईय इचिंतिय इप्पासियं इच्चि  
ठियह मणि वचणि काइं मिठामि इक्कडं शक्रस्तवच  
एनं ततश्चारित्रशुद्धयर्थं करेमि चंते० काउस्सग्गं उ  
द्योयचिंतणं न पुनरादावेव अतिचारचिंतनं निडाप्र  
मादेन स्मृतिवैकल्यसंनवात् ततो दर्शनशुद्धयर्थं लो  
गस्स उद्योयगरे उद्योयचिंतणं ज्ञानशुद्धयर्थं पुस्करवर०  
उस्सग्गो अचकुविसइ जोगुवो सिरियउ इत्याद्यति  
चारचितनं श्रावकाणां तु नाणंमि दंसणंमीति गाथा

ष्टकचिंतनं ततो मंगलार्थं सिद्धाणं बुद्धाणमिति स्तु  
 तीनां नष्टनं मुहपत्तीपेहणं वंदणयं उपविश्य प्रति  
 क्रमणसूत्रनष्टनं अप्पुच्छिउमि आराहणाए पनणित्ता  
 वंदणयं स्वामणयं यदि पंचाद्याः साधवो नवन्ति तदा  
 त्रयाणां तक्रियतां तत्र रात्रिके दैवसिके पाह्निकादिस  
 त्कसंबुद्धसमाप्तिहामणेषु क्कमयितारः सकलं हाम  
 एकसूत्रं नष्टन्ति क्कमणीयास्तु परपत्तियं पदात् अवि  
 ह्णिणा सारिया वारिया चोश्या पन्निचोश्या मणेण वा  
 याए काएण वा मिह्णामि डक्कडं इति नष्टन्ति । अथ वं  
 दणपुवं बुमासिया चिंतणं आयरिय उवद्याए उस्स  
 ग्गा उम्मासिय चिंतणं करिह्ण पञ्चस्काणं जाव उद्योयं  
 नष्टन्ति मुहपत्ती पन्निजेहणं वंदणयं पञ्चस्काणं इहामो  
 अप्पुसहिं विशाललोचनदलं० इति स्तुतित्रयनष्टनं  
 शकस्तवः । पूर्णा चैत्यवंदना ॥ तिलकाचार्यकृत विधि  
 प्रपामे ॥ संपूर्णा चैत्यवंदना अस्तोत्रा ततो गुरून् वं  
 दित्वा यथाज्येष्ठं साधुवंदनं क्कमा० इह्णपडिक्कमणइ ठ  
 यहं इहं क्कमा० सबस्सवि देवसियं० करेमि जंते का  
 उस्सग्गो समग्रं दिनातिचारं चिंतार्थं ॥ श्रावकाणां तु  
 नाणंमि दंसणंमीति गाथाष्टकचिंतार्थं अथ उद्योयं  
 नष्टित्वा मुहपत्तीपेहणं वंदणयं आलोचणं उपविश्य

पद्मिक्रमणासत्रनणनं ततः अष्टुष्टिभि आराहणाए  
 नणित्ता वंदणयं स्वामणयं वंदणयपुवं चरितशुद्धिनि  
 मित्तं आयसिय उवद्याये० काउस्सग्गो उवोयडुगचिंत  
 णं ततो दंसणशुद्धिहेउं उवोयं नणित्ता उस्सग्गो उ  
 वोयचिंतणं तउ नाणशुद्धिकए पुस्करवर काउस्सग्गो  
 उवोयचिंतणं अथ शुद्धचारित्रदर्शनश्रुतातिचारा मंग  
 लार्थ सिद्धाणं बुद्धाणं पंच गाथा नणित्वा सुयदेवया  
 ए उस्सग्गतीए शुद्धिदेवयाए उस्सग्गतीएशुद्धि नमु  
 क्कारं नणित्ता मुहपोत्तीपेहणं ततो यथा राज्ञा कार्या  
 यादिष्टा पुरुषाः प्रणम्य गच्छन्ति कृतकार्याः प्रणम्य  
 निवेदयन्ति एवं साधवोऽपि गुर्वादिष्टा वदनकपूर्वं चा  
 रित्रादिशुद्धिं कृत्वा पुनर्निवेदनाय वंदनं दत्त्वा नणं  
 ति इवामो अणुसठि नमोस्तुवर्धमानाय इति स्तुति  
 त्रयनणनं शक्रस्तवस्तोत्रनणनं इत्तखउ कम्मखउ०  
 आचार्योपाध्यायसर्वसाधुहृमाश्रमणाणि ॥ हृमा०  
 इवा० सप्राउं संदिसावउं हृमा० इवा० सप्राउ क  
 रउं ॥ ततः स्वाध्यायं कृत्वा गुरून् वंदित्वा यथाज्येष्ठं  
 साधुवंदनम् इति दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः ॥

इस उपरले पाठमें राइपडिक्कमणेके अंतमें चार  
 शुद्धि चेत्यवंदना करनी कही है. और दैवसिक प्र

तिक्रमणे प्रारंभमें चार शुद्धें चैत्यवंदना करनी कही है. श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और इन दोनोकी शुद्ध्योंकी कहनी कही है.

तथा श्रीमद्गुणाध्याय श्रीयशोविजयगणित्तियें पांच प्रतिक्रमणोका हेतुगर्जित विधि लिखी है, तिसका पाठ लिखते हैं ॥ पठम अहिगारें वंडु जाव जिणोसरू रे ॥ बीजे दवजिणंद त्रीजे रे, त्रीजे रे, इग चेश्य ठवणा जिणो रे ॥ १ ॥ चोथे नामजिन तिहुयण ठवणा जिना नमुं रे ॥ पंचमें ठठे तिम वंडुरे, वंडुरे विहरमान जिन केवली रे ॥ २ ॥ सत्तम अधिकारें सुय नाणं वंदियें रे, अठमी शुद्ध सिद्धाण नवमे रे, नवमे रे, शुद्ध तिब्बाहिव वीरनीरे ॥ ३ ॥ दशमे उज्जयंत शुद्ध वलिय इग्यारमें रे, चार आठ दश दोय वंदो रे, वंदोरे, श्रीअष्टापदजिन कह्या रे ॥ ४ ॥ बारमे सम्यग्दृष्टी सुरनी समरणा रे, ए बार अधिकार जावो रे, जावोरे, देव वांदतां नविजना रे ॥ ५ ॥ वांडं तुं इठ कारि समस श्रावको रे, खमासमण चउदेइ श्रावक रे, श्रावक रे, जावक सुजस इस्सुं नणें रे ॥ ६ ॥ तिब्बाधिप वीर वंदन रैवत मंफन, श्रीनेमि नति तिब्ब सार ॥ चतुरनर ॥ अष्टापद नति करी सुय दें

वया, काउस्सग्ग नवकार चतुरनर ॥ ७ ॥ परी० ॥  
 क्षेत्र देवता काउस्सग्ग इम करो, अवग्रह याचन  
 हेत ॥ चतुरनर ॥ पंच मंगल कही पूंजी संमासग,  
 मुहपत्ति वंदन देत ॥ चतुरनर ॥ ९ ॥ परी० ॥

इस उपरके पाठमें देवसि पडिक्कमणा करतां प्र  
 थम वारा अधिकारसहित चैत्यवंदना करनी कही  
 है. तिसमें चौथा कायोत्सर्ग वेयावच्चगराणंका कर  
 णा तिसकी शुइ कहनी कही है ॥ तथा दूसरे पाठ  
 में, श्रुतदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा  
 कहा है. इसी तरें राइप्रतिक्रमणोके अंतमें चार शुइकी  
 चैत्यवंदना करनी कही है ॥

यह श्रीयशोविजयजी उपाध्यायका पंफितत्व  
 जो था सो आज तक सब जैनमति साधु श्रावकों  
 में प्रसिद्ध है मात्र जिनके रचे हूवे ग्रंथोंको वाचने  
 सेंही तो शंका करने वाले वादी प्रतिवादीयोंका म  
 द दूर होजाता है, यह पंफितने सैंकडो ग्रंथोंकी  
 रचना करी है तिसमें कोइनी ग्रंथके बिच कोइनी  
 शंकित वात दिखनेमें नही आई है, सब शंकायों  
 का समाधान करके रचना करी है. यह वात कोइ  
 नी समजवान जैनीसैं नामंजूर नही होती है.



ऐसे ऐसे महापंथितोने जब चार शुष्की चैत्यवंदना और श्रुतदेवता क्षेत्रदेवताका कायोस्सर्ग प्रतिक्रमणमें करना लिखा है, तो फेर रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों पूर्वाचार्योंके मतसें विरुद्ध तीन शुष्के पंथ चलानेमें कुञ्चनी लज्जा नही आती होवेगी? वे अपने मनमें ऐसे विचार नही करते होवेगेकि? हमतो पूर्वाचार्योंकी अपेक्षासें बहुत तुष्ट बुद्धिवाले हैं. तो फेर पूर्वाचार्योंके परंपरासें चले आए मार्गकी उद्घापना करके कौनसी गतिमें जावेंगे. थोड़ीसी जिंदगीवास्ते वृथा अनिमान पूर्ण होके निःप्रयोजन तीन शुष्का कदाग्रह पकडके श्रीसंघमें ठेद नैद करके काहेकों महामोहनीय कर्मका उत्कृष्ट बंध बांधना चाहियें? हमारा अनिप्राय मुजब इनोके हृदयमें यह विचार निश्चैसेंही नही आता होवेगा. जेकर आता होवे, तो फेर पूर्वाचार्योंके रचे हुए सैंकडों ग्रंथोंरूप दीपोकी माला हाथमें लेकर काहेकों तीन शुष्करूप कदाग्रहके खाडेमें पडनेकी इत्ता रखते हैं? यह देखनेसें अैसा सिद्ध होता हैके इनोकों यह विचार नही आता है.

यह विचारतो अपहृपाति सम्यग् दृष्टी, नवनी

रू जीवोंको होता है, परंतु स्वयंनष्ट अपरनाशकाको तो स्वप्नमेंनी ऐसी जावना नही आती है. इस वास्ते हे जोले श्रावको तुम जो आपना आत्मका क व्याण श्चक हो, अरु परन्वमें उत्तमगति, उत्तम कुल, पाकर बोधबीजकी सामग्री प्राप्त करणके अन्ति जापी होवो तो तरन तारन श्रीजिनमतसम्मत जैसे जैनमतके हजारो पूर्वाचार्योका मत जो चार शुश्यों का है तिनको ठोडके दृष्टी रागसें किसी जैनानासके वचनपर श्रद्धा रखके श्रीजिनमतसें विरुद्ध जो तीन शुश्योंका मत है, तिनको कदापि काले अंगीकार क रण तो दूर रहो, परंतु इनको अंगीकार करणका त र्कनी अपने दिलमें मत करो, क्योंकि जो धर्म साथ न करना होता है सो सब जगवान्के वचनपर शुद्ध श्रद्धा रखनेसें होता है, इसी वास्ते जो श्रद्धामें विक ल्प हो जावे तो फेर जैसे महासमुद्देमें सुलटा जहाज चलते चलते उलटा हो जावे तो उन जहाजमें बैठ नेवालेका कहा हाल होवे ! तिसी तरें यहांनी जानना चाहीयें. इस वास्ते आप कोइकी देखा देखीसें किंवा फिसी हेतु मित्रके पर सरागदृष्टी होनेसें मृगपाशके न्याये तीन शुश्रूप पाशमें मत पडना. इस्सें बहोत सा

वधान रहना चाहियें. श्रीजिनवचन उच्चापनसें ज  
माली जैसे बडे बडे महान्पुरुषोंकोंजी कितना दीर्घ  
संसार हो गया है. यह बातों अजबता आप श्राव  
कोंमेसें बहोतसें जनोंने सुनी होवेगी तो फेर वो पु  
रुषोंके आगे आपनतो कुञ्जनी गणतीमें नही है, तो  
फेर हमजादा कहा कहै. यह हमारी परम मित्रता  
सें हितशिद्धा है. सो अवश्य मान्य करोगें जिस्सें आ  
प सम्यक्त्वका आराधक होके संसारत्रमणसें बच  
जावेगें, श्रीवीतराग वचनानुसार चलेगें तो शीघ्रही  
आपना पदकों पावेगें इस बातमें कुञ्जनी संशय रक्क  
ना नही. समजुकों बहोत क्या कहना. हमतो शंका  
दूर करणे वास्ते पूर्वाचार्योंके रचे हुए बहोतसें ग्रंथों  
का पाठ उपर लिखके समाधान कर दिखाया. फेरनी  
कितनेक ग्रंथोका पाठ लिख दिखलाते हैं ॥

तथा श्रीराजधनपुर अर्थात् श्रीराधणपुरके नामा  
गारमें पूर्वाचार्यकृत षडावश्यकविधि नामा ग्रंथ है,  
तिसका पाठ यहां लिखते है. षडावश्यकानि यथा॥  
पंचविहायारविसु, द्विद्वैज मिह साहु सावगो वावि ॥  
पडिकमणं सहगुरुणा, गुरुविरहे कुण्ड इकोवि ॥ १ ॥  
वंदितु चेस्याइं, दाउं चउराइ ए खमासमणे ॥ जूनि

हिय सिरोसयला, श्यारमिडोकडं देइ ॥ १ ॥ सामा  
 श्य पुत्रमिवा, मी गइउं काउस्सगमिच्चाई ॥ सुत्तं न  
 णिय पलंबिय, जुअ कुप्परधरियपहिरण उं ॥ ३ ॥  
 घोडगमाई दोसेहिं, विरहीयंतो करेइ उस्सगं ॥ ना  
 हिअहो जाणुठं, चउरंगुल उअरिय कडिपट्टो ॥ ४ ॥  
 तउयधरेइ हियए, जहक्कमं दिणकए अईअारे ॥ पा  
 रेतु नमुकारेण, ( इति प्रथममावश्यकम् ॥ १ ॥ )  
 पढइ चउविसत्तयदंमं ॥ ५ ॥ इति द्वितीय मावश्यकम्  
 ॥ २ ॥ संमासगे पमज्जिय, उवविसिय अलग्गविय  
 य वाहुजुउं ॥ मुहणं तगं च कायं, च पेहए यंच  
 विसई हा ॥ १ ॥ उच्छियत्तिउं सविणयं, विहिणा गु  
 रुणो करेइ किइ कम्मं ॥ वत्तीसदोसरहियं, पणवीसा  
 वस्सगगविसुद्धं ॥ २ ॥ अह सम्ममवणयंगो, कर  
 जुअविहिधरिअपुत्तिरयहरणो ॥ परिचिंतइ अश्यारे,  
 जहक्कमं गुरुपुरो वियडे ॥ ३ ॥ अह उवविसीतुं ( इ  
 ति तृतीयमावश्यकम् ॥ ३ ॥ ) सुत्तं, सामायिय मायिय  
 पढिय पयउं ॥ अप्पुच्छियम्मि इच्चा, इ पढइ इहउच्छिउं  
 विहिणा ॥ ४ ॥ दाऊण वंदणंतो, पणगाइ सुजइ सु  
 खामए तिन्नी ॥ किइ कम्मं करियायरि, यमाइ गाहा  
 तिगं पढई ॥ ५ ॥ इति तुर्यमावश्यकम् ॥ ४ ॥ इय

सामायिय उस्स, ग्गसुत्त मुच्चरिय काउस्सग्गच्छिं  
 ॥ चिंतइ उज्जोअचरि, तअइयार सुद्धिकए ॥ ६ ॥  
 विहिणा पारीअ (अयं लोगस्स द्यात्मकआरित्रशुद्धयु  
 त्सर्गः ॥ १ ॥) समत्तस्स ६ सुद्धिहेउं च पढइ उज्जो  
 अं ॥ तह सबलोअ अरिहं, त चेई आराहणुस्सग्गं ॥ ७ ॥  
 काउं उज्जोअगरं, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो ॥ (अयं  
 दर्शनस्य लो० ॥ १।२) ॥ पुस्करवरदीवहं, कहइ सुअ  
 सोहणनिमित्तं ॥ ७ ॥ पुण पणविसोस्सासं, उस्स  
 ग्गं कुणइ पारए विहिणा ॥ (अयं ज्ञानस्यलो ० १ ॥ ३ ॥)  
 तो सयल कुसल किरिया, फलाण सिद्धाण पढइ अय  
 ॥ ८ ॥ अहसुअसमिद्धिहेउं, सुअदेवीए करेइ उस्सग्गं ॥  
 चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ वदेइ व तीइ शुई ॥ १० ॥ एवं  
 खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ शुई ॥ पठिऊण  
 पंचमंगल, सुवविसइ पमज्ज संमासे ॥ ११ ॥ इति  
 पंचममावश्यकम् ॥ ५ ॥ पुवविहिणेव पेहिय, पुत्तिं  
 दाऊण वंदणं गुरुणो ॥ इति षष्ठमावश्यकम् ॥ ६ ॥  
 इत्थामो अणुसंठिति, जणियं जाणुहितो ठाइ ॥ १२ ॥  
 गुरुशुइ गहणो शुइ ति, न्नि वद्धमाणस्करस्सरा पढई ॥  
 सक्कडुवं अपठिय, कुणइ पठित्त उस्सग्गं ॥ १३ ॥ एवं  
 ता देवसिय ॥ इति दैवसिक प्रतिक्रमण विधिः ॥ १ ॥

राश्मवि एवमेव नवरितहिं पढमं दाउं मिञ्चामि इक्कडं  
 पढइ सक्कडयं ॥ १ ॥ उठिय करेइ विहिणा, उस्सग्गं  
 चिंतए अउक्कोअं ॥ अयं ज्ञानस्य कायोत्सर्गं. लो०  
 ॥१॥ वियं दंसणसुद्धिइ॥अयं द्वितीयो दर्शनस्य लो०॥  
 १।२। चिंतएतडइममेव ॥ ३ ॥ तइए निसाइअरं,  
 जहक्कमं चिंतिकण पारेइ ॥ इति तृतीयश्चारित्रस्य  
 लो० ॥ १।३ ॥ इति प्रथममावश्यकम् ॥१॥ सिद्धयं  
 पडित्ता, पमक्कसंमास मुवविसइ ( इति द्वितीयमावश्य  
 कम् ॥ २ ॥ ) पुवं च पुत्ति पेहण वंदण मालोय ( इति  
 तृतीयमावश्यकम् ॥ ३ ॥ ) सुत्तपढणं च ॥ वंदण स्वा  
 मण वंदण गाहतिगपढण ( इति चतुर्थमावश्यकम् ॥  
 ॥ ४ ॥ ) उस्सग्गो ॥ ४ ॥ तडयचिंतइ संजम, जोगा  
 ए न होइ जणमेहाणी ॥ तं पडिवज्जामि तव,ठम्मासं  
 तान काउ मलं ॥ ५ ॥ एमाइ इगुणतीसुण, यं पीन  
 सहो न पंच मासमवि ॥ एवं चउ तिव मासं, न  
 समडो एगमासंपि ॥ ६ ॥ जा तंपि तेर सुण चउ, ती  
 सइ माइउ डुहाणीए ॥ जा चउउंनो अयं विलाइं  
 जापोरिसी नमोवा ॥ ७ ॥ जं सक्कइतं हियए, धरेत्तु  
 ( इति पंचममावश्यकम् ॥५॥ पेहणपोत्तिं दाउं वंदण  
 मसढो तं चिय पञ्चस्कए विहिणा ॥ ७ ॥ इति पष्ठमा

वश्यकम् ॥ ६ ॥ इहामो अणुसंज्ञिति नणीअ उववि  
सीअ पढइ तिन्नि शुइ ॥ मीउसदेणं सकळयाइ तो चेइ  
एवंदे ॥ ए ॥ इति रात्रि प्रतिक्रमणे षडावश्यकानि  
॥ २ ॥ अह पस्वियं चउदसी, दिणंमि पुवं व तळ  
देवसियं सुत्तं तं पडिक्कमित्तं, तो सम्मं इमं कमंकुणइ  
॥ १० ॥ मुहपोत्ती वंदणयं संबुद्धा खामणं तहा लो  
ए ॥ वंदणपत्तेय खामणं च वंदणयमह सुत्तं ॥ ११ ॥  
सुत्तं अप्पुठाणं, उस्सग्गो पुत्तिवंदणं तहयं ॥ पङ्कतिय  
खामणयं, तह चउरो ढोन वंदणया ॥ १२ ॥ पुववि  
हिणेव सवं, देवसियं वंदणाइ तो कुणई ॥ सिद्ध सूरि  
उस्सग्गो, जेउ संतिथय पढणेय ॥ १३ ॥ एवं चिय च  
उमासे, वरिसे य जहक्कमं विहीणेउ ॥ परक्कचउमास  
वरिसे, सुनवरिनामंमि नाणहं ॥ १४ ॥ तह उस्सग्गो  
जोआ, बारस ( १२ ) वीसा ( २० ) समंगलचत्ता ॥  
( ४० ) संबुद्धखामणत्ति पण सत्त साहूण जहसंखं  
॥ १५ ॥ इति श्रीपादिकादिप्रतिक्रमणषडावश्यकं  
संपूर्णम् ॥

इस उपरले पाठमें दैवसिक प्रतिक्रमणका विधि  
में चैत्यवंदना चार शुष्की करनी, श्रुतदेवता तथा  
क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और तीन शुष्यों

कहनीयां कहीयां है. और राइ पडिक्कमणेके अंतमें चार शुइसैं चैत्यवंदना करनी कही है. यद्यपि कि सी किसी शास्त्रोक्त विधिमें सामान्य नामसैं चैत्य वंदना करनी कही है. तहांनी प्रतिक्रमणेकी आद्यं तकी चैत्यवंदनामें चार शुइकी चैत्यवंदना जान ले नी क्योंकि उपर लिखे हूए बहुत शास्त्रोंमें विस्तार सैं चारही शुइपूर्वक चैत्यवंदना करनी कही है. सर्व आचार्योंका एकही मत है. किसी जगे सामान्य वि धि कहा है. और किसी जगे विस्तारसैं विधिका कथन करा है.

सुइ जन नवनीरुयोंकूं तो शास्त्रकी सूचना मा त्रसैंही बोध होजाता है, तो जब बहु ग्रंथोंका लेख देखे तब तो तिनोंकों किंचित् मात्रनी कदाग्रह नही रहता है. इस वास्ते हम बहुत नम्रतापूर्वक रत्नवि जयजी अरु धनविजयजीसैं कहतें हैंकि प्रथम तो आप किसी त्यागी गुरुके पास फेरके संयम लीजी ए, अर्थात् दीक्षा लीजीए, पीठे साधुसमाचारी, जि नसमाचारी, जगत्रंडसूरिप्रमुख पूर्वपुरुषोंकों जिनकों तुमनेही अपने आचार्य माने हैं तिनकी तथा ति नोंके शिष्य परंपरायकी समाचारी मानो. यथाशक्ति



संयमतपमें उद्यम करो और जैनमतसें विरुद्ध जो तीन शुद्धी प्ररूपणासें कितनेक जोले नव्य जी वोंकूं व्युद्ग्राही करा है. तिनोकों फेर सत्य सत्य जो चार शुद्धीका मत है सो कहकर समजावो, और उत्सूत्र प्ररूपणाका मिथ्या दुष्कृत देवो, तो अवश्यही तुमारा मनुष्य जन्म सफल हो जावेगा, नही तो जिन वचनसें विरुद्ध चलनेके लीये कौन जाने कैसी कैसी अवस्था यह संसारमें जोगनी पडेगी. सो ज्ञानीकों मालुम है, और आपने ह्योपशम मुजव आपनजी जानते है.

प्रश्नः—प्रथम तुम हमकों यह वात कहोकि सम्यग्दृष्टी देवतादिकके कोयोस्सर्ग करणेसें क्या लाभ होता है ? और किस किस शास्त्रमें सम्यग्दृष्टी देवतादिकोका मानना कायोस्सर्ग करना लिखा है, और किस किस श्रावक साधुने यह कार्य करा है, सो सब हमकूं समजावो ॥

उत्तरः—श्रीपंचाशक सूत्रके एकोनविंशति पंचाशकाका पाठमें इसी तरेसें लिखा है, सो आपको लिख बताते है. तथाच तत्पाठः ॥ किंच अस्मो वि अन्विचि तो, तथा तथा देवयाणिउण ॥ मुद्धजणाणहिउख

लु, रोहिणीमाई मुण्यवो ॥१३॥ व्याख्या । अन्यदपि  
 अस्ति विद्यते चित्रं विचित्रं तप इति गम्यते तथा ते  
 न तेन प्रकारेण लोकरूढेन देवतानियोगेन देवतोद्देशेन  
 मुग्धजनानामव्युत्पन्नबुद्धिलोकानां हितं खलु  
 पथ्यमेव विषयान्यासरूपत्वात् रोहिण्यादिदेवतोद्देशेन  
 यत्तद्देहिण्यादि मुण्यवोक्ति ज्ञातव्यं । पुद्भिङ्गता च सर्व  
 त्र प्राकृतत्वादिति गार्थार्थः॥देवता एव दर्शयन्नाह । रो  
 हिण्यत्रंवा तद् मद्, उस्मिया सवसंपया सोरका ॥ सु  
 यसंति सुराकाली, सिद्धाश्या तद्वा चैव ॥१४ ॥ व्या  
 ख्या । रोहिणीः अंवा १ तथा मद्पुष्पिका ३ सवसं  
 पया सोरकति ४ सर्वसंपत् ५ सर्वसौख्या चेत्यर्थः॥ सुय  
 संतिसुराति ६ श्रुतदेवता ७ शांतिदेवता चेत्यर्थः॥ सुय  
 देवय संतिसुरा इति च पाठान्तरं व्यक्तं । उच काली ए  
 सिद्धायिका इत्येता नव देवतास्तथा चैवेति समुच्चयार्थे  
 संवाश्या चैवति पाठान्तरमिति गार्थार्थः ॥ ततः किमि  
 त्याह । एमाऽ देवयात्र, पद्भुञ्च अवउस्सग्गात्र जीवन्ती॥  
 णाणादेसए सिद्धा, ते सव्वे चैव होऽ तवो ॥ १५ ॥  
 व्याख्या । एवमादिदेवताः प्रतीत्यैतदाराधनायेत्यर्थः ॥  
 अवउस्सगति अपवसनानि अवजोपणानि वा । तुःपू  
 रणे । ये चित्रा नानादेशप्रसिद्धास्ते सर्वे चैव न्वन्ति

तप इति स्फुटमिति तत्र रोहिणीतपो रोहिणीनक्षत्र  
दिनोपवासः सप्तमासाधिकसप्तवर्षाणि यावत्तत्र च  
वासुपूज्यजिनप्रतिमाप्रतिष्ठा पूजा च विधेयेति । त  
थांवातपः पंचसु पंचमीष्वेकाशनादि विधेयं नेमिना  
थांविकापूजा चेति ॥ तथा श्रुतदेवतातप एकादश  
स्वेकादशीषूपवासो मौनव्रतं श्रुतदेवतापूजा चेति ।  
शेषाणि तु रूढितोऽवसेयानीति गार्थार्थः ॥ अथ क  
थं देवतोद्देशेन विधीयमानं यथोक्तं तपः स्यादित्या  
शंक्याह ॥ जल कसायणरोहो, बंजंजिणपूयणं अण  
सणं च ॥ सो सवो चैव तवो, विसेसउ सुध्रलोयंमि  
॥ ३६ ॥ व्याख्या ॥ यत्र तपसि कषायनिरोधो ब्रह्म  
जिनपूजनमिति व्यक्तं अनशनं च नोजनत्यागः सो  
त्ति तत्सर्वं नवति तपोविशेषतो मुग्धलोके । मुग्धलो  
को हि तथा प्रथमतया प्रवृत्तः सन्नन्यासात्कर्मक्षयो  
द्देशेनापि प्रवर्तते न पुनरादित एव तदर्थं प्रवर्तितुं  
शक्नोति मुग्धत्वादेवेति । सद्बुद्धयस्तु मोक्षार्थमेव विहि  
तमिति बुद्धयैव वा तपस्यंति ॥ यदाह ॥ मोक्षायैव  
तु घटते विशिष्टमतिरुत्तमः पुरुष इति । मोक्षार्थघटना  
चागमविधिनैवालंबनांतरस्थानान्जोगहेतुत्वादिति गा  
र्थार्थः ॥ न चेदं देवतोद्देशेन तपः सर्वथा निष्फल

मैहिकफलमेव वाचरणहेतुत्वादपीति चरणहेतुत्व  
 मस्य दर्शयन्नाह ॥ एवं पडिवत्ति ए, तो मग्गाणु  
 सारिजावाउ ॥ चरणं विहियं वहवे, पत्ता जीवा  
 महाजागा ॥ ३७ ॥ व्याख्या ॥ एवमित्युक्तानां  
 साधर्मिकदेवतानां कुशलानुष्ठानेषु निरुपसर्गत्वादि  
 हेतुना प्रतिपत्त्या तपोरूपोपचारेण, तथा इत उक्त  
 रूपात्कपायादिनिरोधप्रधानान्तपसः पातांतरेण एवमु  
 क्तकरणेन मार्गानुसारिजावात् सिद्धिपथानुकूलाध्य  
 वसायाच्चरणं चारित्रं विहितमाप्तोपदिष्टं वहवः प्र  
 नूताः प्राप्ता अधिगता जीवाः सत्त्वा महाजागा म  
 हानुजावा इति गाथार्थः ॥ तथा । सर्वंगसुंदरं तह,  
 णिरुजसिहोपरमनूसणो चैव ॥ आयइजणणसो  
 ह,ग्गकप्परुक्को तह स्मावि ॥ ३७ ॥ पठित्त तवो वि  
 सेसो, अस्सेहि वि तेहिं तेहिं सत्तेहिं ॥ मग्गपडिव  
 वत्तिहेऊ, हं दिवियेयाणुगुणेणं ॥ ३८ ॥ व्याख्या ॥  
 सर्वांगानि सुंदराणि यतस्तपोविशेषात्स सर्वांगसुंदर  
 स्तथेति समुच्चये ॥ रुजानां रोगाणां अजावो नीरुजं  
 तदेव शिखेव शिखा प्रधानं फलं तथा यत्रासौ निरु  
 जशिखा तथा परमायुत्तमानि नूपणान्याचरणानि  
 यतोऽसौ परमनूपणं चैवेति समुच्चये । तथा आयति

मागामिकालेऽजीष्टफलं जनयति करोति योऽसावाय  
 तिजनकस्तथा सौजाग्यस्य सुजगतायाः संपादने क  
 ल्पवृद्ध्य इव यः स सौजाग्यकल्पवृद्ध्यस्तथेति समुच्चये  
 अन्योऽप्यपरोपि उक्ततपोविशेषात्किमित्याह ॥ पठि  
 तोऽधीतस्तपोविशेषस्तपोचेदोऽन्यैरपि ग्रंथकारैस्तेषु ते  
 षु शास्त्रेषु नानाग्रंथेष्वित्यर्थः ॥ नन्वयं पठितोपि सा  
 निष्वंगत्वान्न मुक्तिमार्गं इत्याशंक्याह ॥ मार्गप्रतिपत्ति  
 हेतुः शिवपथाश्रयणकारणं यश्च तत्प्रतिहेतुः स मा  
 र्गं एवोपचारात्कथमिदमिति चेदुच्यते ॥ हंतीत्युपप्रद  
 र्शने विनेयानुगुण्येन शिङ्खणीयसत्वानुरूप्येण न्वन्ति  
 हि केचित्ते विनेया ये सानिष्वंगानुष्ठानप्रवृत्ताः संतो  
 निरनिष्वंगमनुष्ठानं लनंत इति गाथाद्वयार्थः ॥

इस पाठकी जाषा लिखते है ॥ अन्नोवि इत्यादि  
 गाथा ॥ व्याख्या ॥ अन्य प्रकार पूर्वोक्त तपके स्वरू  
 पसें अन्यतरेकान्नी विचित्र प्रकारका तप है तिस  
 तिस प्रकार लोक रूढी करके देवताके उद्देश्य करके  
 जोले अव्युत्पन्न बुद्धिवाले लोकोंको विषयान्यास रूप  
 होनेसें हित पथ्ये सुखदाइही है. रोहिणी आदि देव  
 ताओंके उद्देश करके जो तप करते है. तिसको रोहि  
 णी आदि तप जानना. इति गाथार्थः ॥

अब देवताही दिखाते हुए कहते हैं ॥ रोहिणी  
त्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ १ रोहिणी, २ अंबा, तथा  
३ मदपुण्डिका, ४ सर्वसंपत् ५ सौख्या ॥ सुयसंति  
सुरति ॥ ६ श्रुतदेवता, ७ शांतिदेवता, ८ काली,  
९ सिद्धायिका, १० नव देवीयों है इति गाथार्थः ॥

एमाइ इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ इत्यादि देवता  
कों अश्रित तिनकी आराधनाकेवास्ते अपवसन  
अपजोपण करना ये नानादेशमें प्रसिद्ध है. ये  
सर्व तपविशेष होते हैं. तिनमेंसें रोहिणीतप रोहि  
णीनक्षत्रके दिनमें उपवास करे, इसतरें सात वर्ष  
सात मासाधिक तप करे और श्रीवासुपूज्य तीर्थकर  
नगवंतके प्रतिमाकी प्रतिष्ठा अरु पूजा करे. इति  
रोहिणी तप ॥ १ ॥

तथा अंबातप ॥ पांच पंचमीमें एकाशनादि करना,  
और श्रीनेमिनाथजीकी तथा अंबिकाकी पूजा करे ३  
तथा श्रुतदेवताका तप ॥ इग्यारे एकादशीयोंमें  
उपवास मौनव्रत करे और श्रुतदेवताकी पूजा करे,  
शेषतपविधि रूढीसें जान लेनी ॥ इति गाथार्थः ॥

अथ किसतरें देवताके उद्देश करके विधीयमान  
यथोक्त तप होवे, ऐसी आशंका लेकर कहते हैं.

जड कसाय इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ जिस तपमें कषायका निरोध होवे, ब्रह्म जिन पूजन होवे, और अशननोजनका त्याग होवे, सो सर्व तप जोले लोकोंमें होता है, क्योंकि जोले लोक प्रथम ऐसे तपमें प्रवृत्त हुए जयें अन्यासके बलसे पीठे कर्मक्षयके करने वास्तेनी तप करनेमें प्रवृत्त होते हैं. परंतु आदिहीसे कर्मक्षय करण वास्ते जोले होनेसे प्रवृत्त नहीं होते हैं.

और जो सद्बुद्धिवाले हैं वे तो चाहो पूर्वोक्त कोइनी तप करे सो सब मोक्षके वास्तेही करते हैं, यदाह ॥ उत्तम पुरुषोंकी जो मति है सो मोक्षार्थ मेंही घटे है, और मोक्षार्थकी जो घटना है सो आगमके विधि करकेही है. क्योंकि आगम सिवाय जो वे आलंबन करते हैं, सो सब अनाज्ञोग हेतुक है ॥ इति गातार्थ ॥

ऐसे न कहना के देवताके उद्देश करके जो तप करणा सो सर्वथा निःफलही है, अथवा इस लोक काही फल है, किंतु चारित्रिकाजी हेतु है. अब यह तप जैसे चारित्रिका हेतु है ? सो दिखाते हैं ॥

एवं पडिवत्ति इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ ऐसे उक्त साधर्मिक देवतायोंका कुशल अनुष्ठानमें निरूप

सर्गतादि हेतु करके, प्रतिपत्ति तप रूप उपचार करके, तथा इस उक्त रूपसें कपायादि निरोध प्रधान तपसें, पाठांतर करके ऐसे उक्तकरण करके, मार्गानुसारी होनेसें, सिद्ध पंथके अनुकूल अथ्यवसायसें, “चरणं चारित्रं” आत्मका कथन करा हुआ चारित्र संयम बहुत महानुभाव जीवोंको पूर्वकालमे प्राप्त हुआ है. इति गाथार्थः ॥

तथा सर्वंगसुंदरं इत्यादि दो गाथाकी व्याख्या ॥  
सर्वांग सुंदर है जिस तप विशेषसें सो सर्वांग सुंदर तप. यहां तथा शब्द जो है सो समुच्चयार्थमें है. तथा जो रुजाणां रोगोंका अभाव होना उनको निरुज कहेना सोइ शिखाकी तरें शिखा प्रधान फल करके जिहां है सो निरुजशिखातप जानना. तथा परमोत्तम नृपण आचरण होवें जिससेंती सो परम नृपण तप जानना. चकार समुच्चयार्थमें है. तथा जो आगमिक कालमें मनवन्तित फलकी सिद्धि करे सो सौभाग्य कल्पवृक्ष तप जानना.

इस उक्त तपसें अरु अन्य प्रकारके तपसें क्या फल होवे सो बतलाते है. कहे हैं जो तपके जेद



विज्ञेय अन्य ग्रंथकार आचार्योंने तिन तिन नाना प्रकारके ग्रंथोंमें इत्यर्थः ॥

इहां वादी प्रश्न करता हैकि यह तुमारा तप वांठासहित होनेसें मुक्तिका मार्गमें नहीं होता है.

इसका उत्तर कहतेहैं. यह पूर्वोक्त वांठा सहित तप जो है सो मोक्ष मार्गकी प्राप्ति होनेमें कारण है, जो मोक्षमार्गकी प्रतिपत्तिका हेतु है. सो मोक्ष मार्ग ही उपचारसें है.

पूर्वपक्षः—यहपूर्वोक्त तपसें कैसें मोक्ष मार्ग हो शक्ता है?

उत्तरः—शिक्षणीय जीवके अनुरूप होने करके हो शक्ता है. क्योंकि कितनेक शिष्य प्रथम वांठासहित अनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए होए “निरनिष्वंग” अर्थात् वांठारहित अनुष्ठानकों प्राप्त होते है. इति गा आद्यार्थः ॥

अब नव्य जीवोंकों विचारना चाहियें कि जब श्रावक श्राविकायोंकों रोहिणी अंबिका प्रमुख देवीयोंका तप करणा और तिनकी मूर्तियोंकी पूजा करनी शास्त्रमें कही है. और तिनके आराधनके वास्ते तप करणा कहा है, अरु सो तप उपचारसें मोक्षका मार्ग कहा है. तो फेर जो कोइ मताग्रही शासनदेवताका का

योत्सर्गं अरु शुद्ध कहनी निषेध करता है तिसको  
 श्रीजैनधर्मकी पंक्तिमें क्योंकर गिनना चाहियें, अर्थात्  
 नहीज गिनना चाहियें. क्योंकि जैनमतमें सूर्यस  
 मान श्रीहरिचन्द्रसूरिकृत पंचाशक सूत्रका मूल, औ  
 र नवांगी वृत्तिकारक श्रीअनयदेवसूरिकृत पंचाशक  
 की टीकामें तप करके सम्यग्दृष्टी देवताओंके प्रतिमा  
 की पूजा करनी ऐसा प्रगटपणे कहा है. तो जैसे  
 श्रीहरिचन्द्रसूरि और अनयदेवसूरि जो यह पंचम  
 कालमें सकल शास्त्रोंके पारंगामी थें, जो संपूर्ण श्रुत  
 ज्ञानी कहाते थे तिनो महा पुरुषोंका वचन जो न  
 माने तो क्या तिस अज्ञ जीवकों समजाने वास्ते  
 श्रीमहाविदेह क्षेत्रसें कोइ केवलज्ञानके धरने वाले के  
 वली जगवान् आवेगा? हम बहुत दिलगिरीसें लिख  
 ते हैंकि यह जो तुम नवीन मतका अंकूर उत्पन्न क  
 रनेकी चाहना रखते हो की सम्यग्दृष्टी देवतादिक  
 का कायोत्सर्ग न करना अरु शुद्ध्यांजी न कहनीयां  
 सो किस शास्त्रमें ऐसा लेख देख कर कहते हो? किस  
 शास्त्रमें ऐसा पाठ लिखा हैकि सम्यग्दृष्टी देवताओं  
 का कायोत्सर्ग करनेसें अरु इनोका शुद्ध्यां कहनेसें  
 पाप लगता है? सो हमकों बतादो.

जेकर तुम कहोगेकी जोले आवकोंको पूर्वोक्त देवताओंका तप करना, और पूजन करना कहा है, परंतु तत्त्ववेत्ता आवकों तो नहीं कहा है।

तिसका उत्तर:—हे जब्य यहां तत्त्ववेत्ताओंकी पूर्वोक्त देवताओंका तपादि करना निषेध नहीं करा है, किंतु इस लोकके अर्थ न करना, परंतु मोक्षके वास्ते करे तो निषेध नहीं। ऐसा कथन है, जेकर आ वश्यक बंदिंतुं सूत्रमें ॥ सम्मदिष्ठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ इस पाठकी चर्चा हम उपर लिख आ ए है, यह पाठ तो तत्त्ववेत्ता आवकोंकी प्रायें नित्य पठनेमें आता है, इस वास्ते धर्मकृत्योंमें विघ्न दूर करनेकों, पूर्वोक्त देवताओंका तप, पूजन, कायोत्सर्ग अरु शुद्ध कहनी जानकार आवकोंको करनी चाहियें यह सिद्ध हुआ।

तथा जोले आवकोंकी पूर्वोक्त देवताओंका तप करना, पूजन करना, यहकी मोक्ष मार्गही कहा है इस वास्ते धर्मानिरुची जनोंकों किसी अज्ञ जनके जूठे वचन सुनकर हठाग्रही होना न चाहियें, क्यों कि यह हूंमा अवसर्पिणी कालमें पूर्वेकी जो आज यह जैनमतमें बहोत बहोत मत दिखनेमें आता है

सो सब ऐसेही कदाग्रही जिनोसें निकला है जिस्सें आज सेकडा मत प्रचलित हो रहा है क्योंकि किस विकारी पुरुपने जो अपने माहापण चतुराई वता नेके वास्ते सौ पञ्चास आदमीकी सन्नामें वात नि कालीकि यह अमुक वान इसी रीतीसें चलनी चाहि यें ऐसा शास्त्रों देखनेसें मालुम होता है इसीतरेकी कोइ वात उनके मुखमेंसें निकली गई तो फेर उस वातकों सिद्ध करनेके वास्ते उक्त पुरुपके मनमें ह जारों कुयुक्तियों उत्पन्न होती है पीठे उसकों कुछ स त्यासत्य जापण करनेका जानही रहता नहीं है. उ नकों यहही विकार अपने हृदयमें जरपूर हो रहेता हैकि किसीतरेकी मेरा वचन सत्य करके सिद्ध करना चाहीयें परंतु कुयुक्ति करनेसें मेरा जनम विगड जा वेगा ऐसा विचार उनकों किंचित् मात्रकी आता नहीं है, वो अपना कथन सत्य करनेका हठ कजी ढोडता नहीं. ऐसीही उनकी प्रकृति हो जाती है ऐसा होनेसेंही दिग्भ्रर और ढूढीयें प्रमुख बहुत मनकल्पित मतों प्रचलित हो गया है. कितनेक जो कजी ऐसेही होताहैकि जिसके वचन पर उनको विसवास बैठ गया तो फेर वो चाहो जूग हो चाहो

सच्चा हो परंतु वो लोकतो उनकेही वचनके अनुजाइ चलते है तिससें फेर वो हठ्याही, पुरुषकोंनी मज बुत नाद लग जाता हैकि अब मैरी बातही सिद्ध करके लोकोंमें चलानी चाहियें जेकर मैरेकों लोक नी कहेंगेंकी यह खरा तत्त्ववेत्ता, अरु शास्त्रशोधक है, देखो, बडे बडे आचार्योंकी जूलनी यह पुरुषने दिखायदीनी ! यह कैसा विद्वान, शास्त्रज्ञ है ! ऐसें ऐसें विकल्प उनके हृदयमें हर हमेस हो रहता है तिससें जिनवचन उच्चापन करनेका जय तो उसको रहता ही नही है. इसी वास्ते हम श्रावक जाइयोंको सत्य सत्य कहते हैं कि अपने जैनमतमें बहोत पंथ प्रचलित हो गया है तो अब कोइ अपना नाम रकनेके लीये नवीन पंथ निकालनेका उपदेश करे तो आप नही सुनोगे अरु कोइ विकारी जनोके कथनसें पूर्वाचार्योंके कहे कथनोको त्रोट फोट करनेकी कुयुक्ति यों करके जूठ हठ नही करोगें तो, अब अपने जैन मतमें कोइनी नवीन तिखल करे जिससें दुंढकोंकी तरे बहुतजनो दुर्गतिका अधिकारी हो जावे ऐसा दुर्गग्रही फितुर होनेका जय मिट जावेगा. अरु जूठ कथन उपदेशक विकारी जनोकोंनी हमारा यह क.

हना है की आपनी परजवमें इस्त कदाग्रहसँ दुःख प्राप्त होवेगा औसी जीती रककर श्रीजिनवचनोंके पर श्रद्धधान ला कर कदाग्रह ढोड द्यो, खरा सम जवान हो तो यह एकजवमें अपना मुखसँ जो जूठा बोल निकल चूका तिसका मिठामिडुक्कड सबज नोकें सम्मत देनेसँ जो मानजंग होनेका दुःख तुमकों लगता है तिसकों सुख रूप समज ल्योकि आगें संसार तरना सुलज हो जावेगा. यह बडा फायदा होवे गा. यही बात अपने हैयेमें दृठ करो, अरु यह जव मेंनी मिठामि डुक्कड देनेसँ विवेकीजनोंके हृदयमें तो तुम महापुरुषोंकी न्याइ वस जावेगें. क्योंकि जो प्रा यश्चित्त लेकर अपना पापोंकी शुद्धि करता है तिसकों चतुर लोक तो बडे पंढितोंसेंनी अधिक गिनते है तो फेर खरा विचार करो तो यह जवमेंनी कुछ मानजंग नही होता है परंतु महत्त्व पणेकी प्राप्ति होती है. इ सीतरें सत्य विचार करणे वाले पुरुषोंकों तो सब बात सुलजही होती है. तो फेर बहोत कहा कहना.

तथा सिद्धराज जयसिंहके राज्यमें जिने कुमुदचं ड दिगम्बरकों जीता, तथा जिने तेतीस हजार मिथ्या दृष्टीयोंके धरोको प्रतिबोध किया, तथा जिने चौरा

सी सहस्र श्लोक प्रमाण स्याद्वाटरत्नाकर ग्रंथकी रचना करी, ऐसे सुविहित चक्र चूडामणी श्रीदेव सूरिजी हुआ, तिनोका रचेला जीवानुशासननामा प्रकरण है. तिस प्रकरणकी टीका श्रीउत्तराध्ययन सूत्रकी वृत्तिके करनेवाले श्रीनेमिचंद्रसूरिजीने करी है फेर उस टीकाकों श्रीजिनदत्तसूरिजीने शोधि है, यह कथन यही पुस्तकके अंतमें ग्रंथकारोंनेही लिखा है यह ग्रंथ अब अणहिलपुर पाटणके जांभागरमें मौजूद है, तिसका पाठ नव्यजीवोको संशयमें पाडनेवालेका कदाग्रह दूर करनेकेवास्ते यहां लिखते है. यह पाठ जो नही मानेगा तिसकों चतुर्विध आसंघने दीर्घ संसारी जान लेना. तथाच तत्पाठः ॥ तह वंन संति माइण, केइ वारिंति पूयणाइयं ॥ तत्त जउं सिरिहरिज्ज,इसूरिणोणुमयमुत्तं च ॥९०१॥ व्याख्या ॥ तथेति वादांतरजणनार्थो ब्रह्मशांत्यादीनां मकारः पूर्ववत् आदिशब्दादंबिकादिग्रहः केऽप्येके वारयंति पूजनादिकमादिग्रहणात्तेषतदौचित्यादिग्रहः तत्पूजादिनिषेधकरणं नेति निषेधे यतो यस्मात् श्रीहरिज्जइसूरेः सिद्धांतादिवृत्तिकर्तुरनुमतमन्नीष्टं तत्पूजादिविधानं उक्तं च जणितं च पंचाशके इति गार्थार्थः ॥

तदेवाह ॥ साहंमिया य एए, महद्भिया सम्मदिष्ठिणो  
जेण ॥ एतोच्चिय उच्चियं खलु, एएइसिंइव पूयाई ॥ प्र  
तीतार्था ॥ न केवलं श्रावका एतेपामिठं कुर्वेति यत  
योऽपि कायोत्सर्गादिकमेतेपां कुर्वतीत्याह । विग्यविघा  
यणहेउं, जइणो वि कुणंति हंदि उस्सग्गं । खित्ताइ  
देवयाए, सुयकेवल्लिणा जउं नणियं १००१ व्याख्या ।  
विघ्नविघातनहेतो रूपइवविनाशार्थं यतयोपि साधवो  
पि न केवलं श्रावकादय इत्यपिशब्दार्थः कुर्वेति विदुधति  
हंतीति कोमलामंत्रणे उत्सर्गं कायोत्सर्गं क्षेत्रादिदेव  
ताया आदिशब्दान्नवनदेवतादिपरिग्रहः श्रुतकेवल्लिना  
चतुर्दशपूर्वधारिणा यतो यस्माद्गणितं गदितमिति  
गाथार्थः । तदेवाह चाउम्मासियवरिसे, उस्सग्गो खित्त  
देवयाए य ॥ पक्खियसेज्जमुराए, करिंति चउमासिए  
वेगे ॥ १००२ ॥ गतार्था ॥ ननु यदि चतुर्मासिकादिज  
णितमिठं किमिति सांप्रतं नित्यं क्रियत इत्याह संपइ  
निज्जं कीरइ. संनिज्जा नावउ विसिइउं ॥ वेयावच्च  
गराणं, इज्जाइ वि बहुयकालाउं ॥ १००३ ॥ व्याख्या ।  
सांप्रतमधुना नित्यं प्रतिदिवसं क्रियते विधीयते  
कस्मात् सांनिध्याजावस्तस्य कारणाद्विजिष्ठादतिगा  
पिनो वेयावृत्त्यकराणां प्रतीतानामित्याद्यपि न केवलं



कायोत्सर्गादीत्यपेरर्थः । आदिग्रहणात्संतिकराणामि  
 त्यादि दृश्यं प्रचूतकालात् बहोरनेहस इति गार्थार्थः ।  
 इत्थं स्थिते किं कर्तव्यमित्याह । विघ्नविघायणहेतुं,  
 चेर्हरररकणाय निच्चं वि ॥ कुक्का पूयार्थं, पयाणं  
 धम्मवं किंचि ॥ १००४ ॥ व्याख्या ॥ विघ्नविघातनहेतो  
 रूपसर्गनिवारकत्वेन आत्मन इति शेषः ॥ चैत्यगृ  
 हररूपाञ्च देवजनपालनात् नित्यमपि सर्वदा न  
 केवलमेकदेत्यपिशब्दार्थः । कुर्याद्विदध्यात् पूजादिकमा  
 दिशब्दात्कायोत्सर्गादिका एतेषां ब्रह्मशांत्यादीनां  
 धर्मवान् धार्मिकः । अयमग्निप्रायः । यदि मोक्षार्थमेतेषां  
 पूजादि क्रियते ततो दुष्टं विघ्नादिवारणार्थं त्वदुष्टं  
 तदिति किंचेत्यन्युच्चय इति गार्थार्थः । अन्युच्चयमेवा  
 ह मिष्ठगुणजुयाणं, निवाश्याणं करेति पूयाइं ॥  
 इह लोय कए सम्मत्त, गुण जुयाणं नउण मूढा  
 ॥ १००५ ॥ व्याख्या ॥ मिथ्यात्वगुणयुतानां प्रथमगुण  
 स्थानवर्तिनां नृपादीनां नरेश्वरादीनां कुर्वति पूजा  
 दि अन्यर्चननमस्कारादि इह लोककृते मनुष्यजन्मो  
 पकारार्थं सम्यक्त्वसंयुतानां दर्शनसहितानां ब्रह्म  
 शांत्यादीनामिति शेषः । न पुनर्नैव मूढा अज्ञा  
 निन इति गार्थार्थः ॥

अत्र इस पाठकी जाया लिखते हैं ॥ तद्वन्सन्ति  
इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ तथा शब्द वादांतरके  
कहनेके लीये है. ब्रह्मशांत्यादिका मकार पूर्ववत्,  
आदिशब्दसे अंत्रिकादि ग्रहण करणे, कितनेक इन  
की पूजादिकका निषेध करते हैं. आदि शब्द ग्रह  
णसें शेष तिनके उचितका ग्रहण करना. तिनकी  
पूजाका निषेध करना योग्य नहीं है, क्योंकि सिद्धां  
तादि महाशास्त्रोंकी वृत्तिके करणेवाले आहरिन्द्  
सरिजी महाराजकों ब्रह्मशांति आदिककी पूजा उचि  
तकृत्य सम्मत है. इनोने श्रीपंचाशकजीमें इनका  
कथन करा है. इति गार्थ्यः ॥ सोऽ कहते हैं.

साहम्मिया इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ यह शा  
सन देव जो है. सो सम्यग्दृष्टि है, महा रुद्धिमान्  
है, साधर्मिक है, इसवास्ते इनकी पूजा कायोत्स  
र्गादि उचित कृत्य करना आवकोंको योग्य है. केवल  
आवकोनेही इनोकी पूजादिक करणी ऐसें नहीं सम  
जनां किंतु साधु संयमीनी इनोका कायोत्सर्ग क  
रते हैं सोऽ कहते हैं ॥

विग्धविघाघण इत्यादि गाथा १००१ की व्या  
ख्या ॥ विघ्नविघात सो उपड्वरूप विघ्नोके विनाश

करणके लीये यति साधुजी क्षेत्रदेवता आदिकका कायोत्सर्ग करते है. आदिशब्दसें नवनदेवतादिकका ग्रहण करना. इसवास्ते निःकेवल श्रावकोनेही इनो का कायोत्सर्ग करणा ऐसा नही समजना. अपितु साधुजी करते है. यह अपिशब्दका अर्थ है. क्योंकि पूर्वोक्त कायोत्सर्ग करणे यह कथन श्रुतकेवली श्रीनड्बाहु स्वामीने कहे है. इति गाथार्थः ॥ सोइ कहते है.

चाउम्मासि इत्यादि गाथा १००५ की व्याख्या ॥ चातुर्मासीमें, सांवत्सरीमें, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा, और पाह्नीमें नवनदेवताका कायोत्सर्ग करणा, एकैक आचार्य चातुर्मासीमेंनी नवनदेवताका कायोत्सर्ग करते है. इति गाथार्थः ॥

पूर्वपक्षः—ननु इति प्रश्ने. जेकर चातुर्मास्यादिकमें क्षेत्रदेवादिकका कायोत्सर्ग करना श्रीनड्बाहुस्वामी जीने कहा है तो फेर क्यों कर अब संप्रतिकालमें नित्य कायोत्सर्ग करते हो. इस प्रश्नका उत्तर ग्रंथ कारही देते है.

संपइ इत्यादि गाथा १००३ व्याख्या ॥ सां प्रत कालमें नित्य दिनप्रति जो क्षेत्रदेवतादिकका

कायोत्सर्ग करते हैं तिसका कारण यह है की सांप्रतकालमें तिन देवताके सांनिध्याभावसें अर्थात् पूर्व कालमें यदा कदा एकवार कायोत्सर्ग करणसें वे देव वे शासनकी प्रजावना निमित्त उपड्वनाशनादि करते थे, और सांप्रतकालमें कालदोषसें यदा कदा कायोत्सर्ग करनेसें वे देव वे सांनिध्य नहीं करते हैं, इस वास्ते तिनकों नित्य प्रतिदिन कायोत्सर्ग द्वारा जागृत करे हुए सांनिध्य करते हैं. इसवास्ते नित्य कायोत्सर्ग करते हैं. तिस नित्य कायोत्सर्गके कारणसें विशिष्ट अतिशयवान् वैयावृत्त्यकरादि देव जो हैं सो जागृत होते हैं. निःकेवल वैयावृत्त्य करनेवाले प्रसिद्ध देवताका कायोत्सर्गही नहीं करते हैं. किंतु शांतिकरणं इत्यादिकोंकाजी ग्रहण करना. तथा प्रचूतकाल अर्थात् बहुत दिनोंसें पूर्वधरोके समयसें इन पूर्वोक्त देवतायोंका नित्य प्रतिदिन पूर्वाचार्य कायोत्सर्ग करते आए हैं. इस वास्ते पूर्वोक्त देवतायोंका नित्य कायोत्सर्ग करते हैं. इति गायार्थः ॥

ऐसें स्थित सिद्ध हुए तो फेर क्या करना चाहियें सो कहते हैं विघ्नविधायण इत्यादि १००४ गायत्री की व्याख्या ॥ विघ्नविधातके वास्ते आत्माके उपस

गर्गनिवारक होनेसें, और श्रीजिनमंदिरकी रक्षा करनेसें, देवचवनकी पाजना करनेसें, नित्यप्रति इन देवतायोंकी पूजा करनी चाहियें. आदिशब्दसेंदि न प्रतिदिन तिन देवतायोंका कायोत्सर्ग करना चाहियें. किनकों करना चाहियें? धर्मिजनकों करना चाहियें. यहां अनिप्राय यह हैकी जेकर मोक्षके अर्थे इन पूर्वोक्त देवतायोंकी पूजादि करे जवतो अयुक्त है. परंतु विघ्न निवारणादिकके निमित्त करे तो कुठनी अयुक्त नहीं है. उचित प्रवृत्तिरूप होनेसें पूजा, कायोत्सर्ग करना युक्तही है. किंच शब्द अन्युच्चयार्थमें है ॥ इति गाथार्थः ॥

अन्युच्चय शेष कहने योग्य जो रहा है सोइ कहते हैं ॥ मिष्ठान्त गुण इत्यादि १००५ गाथाकी व्याख्या ॥ मिथ्यात्वगुणसहित प्रथम गुणस्थानमें वर्तने वाले ऐसे नरेश्वर जो राजादिकों हैं तिनकों जो पूजा नमस्कारादिक करते हैं सो तो इस लोकके प्रयोजन वास्ते करते हैं. परंतु सम्यक्त्वसहित सम्यक्दृष्टि ब्रह्मशांत्यादि देवतांकी पूजा, नमस्कार कायोत्सर्गादि जो करते हैं, सो कुठ मूढ अज्ञानी नहीं करते हैं. इति गाथार्थः ॥

अब इस जीवानुशासन ग्रंथके लेखकों जो कोई हठ ग्राही, अनंतसंसारी, मिथ्यादृष्टि, दुर्लभबोधी जीव न माने तो उसकों जैनसंप्रदायवाले क्योंकर जैनी कहेगा? जेकर उन्हे अपने मुखसे आपको जैनी नाम उहराय रखा तिससे क्या वो जैन बन गया. श्री वीतरागके वचनोपर श्रद्धधान होने सिवाय जैन नही हो सकता है.

पूर्वपक्षीका प्रश्नः—हमने रत्नविजयजी अरु धन विजयजीके मुखसे ऐसा सुनाहै कि हमतो सिद्धांतोंकी पंचांगी मानते हैं. परंतु अन्य प्रकरणादि कुछ चिन्ती नही मानते हैं.

उत्तरः—ऐसा मानना इनोका बहोत बेसमजी का है क्योंकि श्रीअन्नयदेवस्वरिजीने श्रीस्यानांग सूत्रकी वृत्तिमें श्रुत ज्ञानकी प्राप्तिके सात अंग कहे हैं तद् यथा ॥ १ सूत्र, २ निर्युक्ति, ३ ज्ञाप्य, ४ चूर्णि, ५ वृत्ति, ६ परंपराय, ७ अनुभव, यह लेखसें जब पंचांगीमें पूर्वाचार्योंकी परंपरा माननी कही है, और तिसकोंकी रत्नविजयजी अरु धनविजयजी अपने मनःकल्पित नवीन पंथ निकालनेका श्राद्ध पूर्ण करनेके वास्ते नही मानते हैं, तबतो इनकों पंचांगी

मानने वालेजी किसतरसे सुझजन कह सकते हैं ? क्योंकि श्रीस्थानांग सूत्रकी वृत्ति यहजी सूत्रोंका पांच अंगमेंसे एक अंग है तो फेर वृत्तिमें करा हुआ कथनजी इनोको माननेमें जब अनुकूल नहीं होता है तब तो जिस कथनसे इनोका मत सिद्ध हो जावे वो कथन जिस ग्रंथमें होवे तिस कथनकोही मानो परंतु उसी ग्रंथमें इनोका मत तोड़नेवाला कथन होवे, वो कथन नहीं मानना चाहिये ! इसी तरें जो ढूंढीयोकी माफक जहां अपनेको अनुकूल होवे सो बचन सत्य और जो अपनेको प्रतिकूल होवे सो बचन असत्य कह देनेके तुल्य वाणी बन जाती है.

हमारा कहना यह है की कुतर्क करनेवाला, शास्त्रकारोंका लेखकों जुग उहराने वास्ते कोट्यावधि कुयुक्तियों करो, परंतु महागंजीर आशयवाले अरु स मुझ जैसी बुद्धिवाले पूर्वाचार्योंने जो शास्त्रोंकी रचना करी है तिनोका अस्खलित वचनका किसी कुतर्की तुल्यमति वाले लोकोसे पराजव नहीं हो सक्ता है, किंतु पराजव करने वाला आपही आपसे स्वजन हो जाता है. जो शास्त्रोंकी अपेक्षा ढोडके अपनी कुयुक्तियोंसे नवीन मत निकालनेका उद्यम करनेको

चाहना रखता है उसका बोल असंमजस मुखीके टोलेमें तो इवामाफक कनी प्रमाणनी होजावे परंतु विवेकी जनोके आगे तो अत्यंत निस्तेज हो जाता है. जुग कनी सच्चा नही होता है.

अब इनोके कहे मुजब पंचांगी माननेसें तो श्रुत देवता, क्षेत्र देवता अरु जवनदेवताका कायोत्सर्गादिकका करना सिद्ध नही होता है परंतु हम सत्य कह देते है कि इनोने जो यह समज अपने दिलमें निश्चित करके रखा हैं सोनी इनोकी असत्य कल्पनाही जान लेनी परंतु सापेक्ष कल्पना नही है हम पंचांगीके पाठसेंही पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग करना प्रमाण हैं ऐसा सिद्ध कर देते हैं.

तिसमें प्रथम तो श्रीआवश्यक सूत्रकी निर्युक्ति, चूर्णि और टीकाका प्रमाण लिखते हैं ॥ चाउम्मा सि य वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए य ॥ पक्खिय सिङ्ग सुराए, करंति चउमासिए वेगे ॥ १ ॥ अस्य व्याख्या ॥ चाउ० ॥ क्षेत्रदेवतोत्सर्गं कुर्वति ॥ पादिके शय्यासुर्या ॥ केचिच्चातुर्मासिके शय्यादेवताया अप्युत्सर्गं कुर्वति ॥ जाया ॥ कितनेक आचार्य चातुर्मासी तथा संवत्सरिके दिनमें क्षेत्रदेव



ताका कायोत्सर्ग करते हैं. और पाह्नीमें जवन देवताका कायोत्सर्ग करते हैं, अरु कितनेक चातुर्मासिके दिनमें जवनदेवताका कायोत्सर्ग करते हैं. इति गाथार्थः ॥

इस पाठमें जवनदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना कहा है. जेकर रत्नविजय, धनविजयजी कहेंगे कि यहतो हम मानते हैं. परंतु नित्य प्रतिदिन श्रुतदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना नहीं मानते हैं.

उत्तरः—पंचवस्तु शास्त्रमें श्रीहरिजिह्वसुरिजीने श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना कहा है तिसका पाठनी उपर लिख आये हैं तो फेर तुम क्यों नहीं मानते हो? जेकर प्रतिदिन क्षेत्रदेवता और श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग करनेसें मिथ्यात्व किंवा पाप लगता है तो फेर पढ़ी, चातुर्मासी अरु सांवत्सरी रूप महा पर्वोंके दिनोमें पूर्वोक्त कायोत्सर्ग करनेसेंजी महामिथ्यात्व और महा पाप तुमकों लगना चाहियें. तो आप विचारोकि अन्य दिनोमें जो पाप न करे सोही पुरुष निरवद्य महापर्वोंके दिवसोंमें तो अवश्यमेव पाप कर्म करें

तब तिसकों मिथ्यादृष्टि, महा अधम अज्ञानी कहना चाहियें इतना तो तुमनी जानते होंगें, यह बातका जो आप तादृश विचारपूर्वक ख्याल रसको गे तो प्रतिदिन श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग निषेध करणा यह बहोत अयोग्य है औसा आपही समझ जावेंगें, हमकोंनी समजानेकी जरूर नहीं पडेगी.

प्रश्न—श्रुतदेवताके कायोत्सर्ग करणसें क्या लाभ होता है?

उत्तर:—इनके कायोत्सर्ग करनेसें महालाभ होता है यह कथन श्रीआवश्यक सूत्र जो तुम मानते हो तिसमेही करा है सो पाठ यहां लिखते हैं सुयदेवयाए आसायणाए ॥ व्याख्या श्रुतदेवतायाः आशातनयाः क्रिया तु पूर्ववत् । आशातना तु श्रुतदेवता न विद्यते अकिंचित्करी वा । न ह्यनधिष्ठितो मूर्खोऽः स्वर्वागमः अतोऽसावस्ति नचाकिंचित्करी नामालंब्य प्रशस्तमनसः कर्मरूपदर्शनात् ॥

अब इनकी जाया लिखने दे. श्रुतदेवताकी आशातना ऐमें होती हैकि जो कहे श्रुतदेवता नहीं है अथवा जेकर है तो कुतनी नहीं कर शक्ति है ऐमें कहनेवाला आशातना करने वाला है क्योंकि

श्रीजगवंतके कहे आगम अनधिष्ठित नहीं है इस वास्ते श्रुतदेवताकी अस्ति है. श्रुत देवता “ अकिं चित्करी ” ऐसा कहना मिथ्या है. क्योंकि जो कोश श्रुतदेवताका आलंबन करके कायोत्सर्गादि करता है तिसके कर्मक्षय होते हैं. इस वास्ते श्रुतदेवताकी आशातना त्यागके चतुर्वर्णसंघको कर्मक्षय करणे वास्ते अवश्यमेव प्रतिदिन श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग करना और शुष्नी अवश्य कहनी चाहियें.

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टि वैयावृत्त्यादि करनेवाले देवतायोंका कायोत्सर्ग करना और चौथी शुष्में तिनकी स्तुति करणी तिसमें क्या फल होता है.

उत्तरः—पूर्वोक्त कृत्य करनेसें जीव सुलज्जबोधि होनेके योग्य महा शुचकर्म उपार्जन करता है. और तिनकी निंदा करनेसें जीव दुर्लज्जबोधि होने योग्य महा पापकर्म उपार्जन करता है. ऐसा पाठ श्रीठाणांग सूत्र जिसको रत्नविजयजी, धनविजयजी मान्य करते हैं तिसमें है सो इहां लिख देते हैं ॥ पंचहिं गणोहिं जीवा दुर्लज्जबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा अरहंताणमवन्नं वदमाणे अरिहंतपप्पत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वदमाणे आयरियउवघायाणं अवन्नं वदमाणे

चउवन्नसंधस्स अवनं वदमाणे विविक्कतववंजचेराणं  
 देवाणं अवनं वदमाणे पंचहिं णणेहिं जीवा सुल्लज्ज  
 वोहियत्ताए कम्मं पकरेंति अरहंताणं वन्नं वदमाणे  
 जाव विविक्कतववंजचेराणं देवाणं वन्नं वदमाणे ॥  
 इति मूलसूत्रम् ॥ अस्य व्याख्या ॥ पंचहीत्यादि सुग  
 मम् । नवरं दुर्लभा बोधिर्जिनधर्मो यस्य स तथा तद्भा  
 वस्तत्ता तथा दुर्लज्जबोधिकतया तस्यैव वा कर्म मोह  
 नीयादि प्रकुर्वति वध्नंति अर्हतामवस्सुमश्लाघ्यं वदन्  
 यथा । नही अरिहंतत्ती, जाणंतो कीस जुंजए जोए ॥  
 पाहुंडिय उवजीवइ, समवसरणादिरूपाए ॥ १ ॥ ए  
 माइजिणाणअवस्सो, नच तेनाज्जुवंस्तत्प्रणीतप्रवचनो  
 पलब्धेर्नापि जोगानुजवनादेदोपोऽवश्यवेद्यशातस्य  
 तीर्थकरनामादिकर्मणश्च निर्जरणोपायत्वात्तस्य तथा  
 वीतरागत्वेन समवसरणादिषु प्रतिबंधान्नावादिति  
 तथा अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य प्राकृत  
 नापानिवक्ष्येतेत् । तथा किं चारित्रेण दानमेव श्रेयः  
 इत्यादिकमवस्सुं वदन् उत्तरं चात्र । प्राकृतनापाल्वं श्रु  
 तस्य न दुष्टं बालादीनां सुखाध्येयत्वेनोपकारित्वात्तथा  
 चारित्रमेव श्रेयो निर्वाणस्यानंतरहेतुत्वादिति आचा  
 र्योपाध्यायानामवस्सुं वदन् यथा बालोयमित्यादि नच

बालत्वादिदोषो बुद्ध्यादिनिर्वृद्धत्वादिति तथा चत्वारो  
 वर्णाः प्रकाराः श्रमणादयो यस्मिन्स तथा स एव  
 स्वार्थिकाण्विधानाच्चातुर्वर्ण्यं तस्य संघस्यावर्ण्यं वदन्  
 यथा कोयं संघो यः समवायबलेन पशुसंघ इवामार्गं  
 मपि मार्गीकरोतीति नचैतत्साधुज्ञानादिगुणसमुदाया  
 त्मकत्वात्तस्य तेन च मार्गस्यैव मार्गीकरणादिति  
 तथा विपक्वं सुपरिनिष्ठितं प्रकर्षपर्यंतमुपगतमित्यर्थः ।  
 तपश्च ब्रह्मचर्यं च नवान्तरे येषां, विपक्वं वा उदया  
 गतं तपो ब्रह्मचर्यं तद्धेतुकं देवायुष्कादिकं कर्म येषां  
 ते तथा तेषामवर्णं वदन् न संत्येव देवाः कदाचना  
 प्यनुपलन्यमानत्वात् किंवा तैर्विद्वैरिव कामासक्तम  
 नोजिरविरतैस्तथा निर्निमेषैरचेष्टैश्च म्रियमाणैरिव प्रव  
 चनकार्यानुपयोगिनिश्रेत्यादिकं इहोत्तरं संति देवास्त  
 त्कृतानुग्रहोपघातादिदर्शनात् कामासक्ताश्च मोहशा  
 तकर्मोदयादित्यादि । अजिहितं च । एत्थ पसिद्धीमोह  
 णी, यसायवेयणियकम्मउदयाउ ॥ कामसत्ताविरई,  
 कम्मोदयउवियनतेसिं ॥ १ ॥ अणमिसदेवसहावो,  
 निचेछाणुत्तराइकयकिच्च ॥ कालाणुजावतिबु स्सइंपि  
 अन्नबु कुवंतिति ॥ २ ॥ तथा अर्हतां वर्णवा  
 दो यथा । जियरागदोसमोहा, सबन्नुतियसनाहकय

पूया ॥ अञ्चंतसञ्चवयणा, सिवगङ्गमणा जयंति  
 जिणा ॥ १ ॥ इति अर्हत्प्रणीतधर्मवर्णो यथा । बहु  
 पयासणसूरो, अस्सयरयणाणसाथरो जयई ॥ स  
 व्वजयजीवबंधुर, बंधूदविहोइ जिणधम्मो ॥ २ ॥  
 आचार्यवर्णवादो यथा । तेसि नमो तेसि नमो, चावेण  
 पुणो । व तेसि चव नमो ॥ अणुवकयपरहियरया,  
 जे नाणं देति न्वाणं ॥ ३ ॥ चतुर्वर्णश्रमणसंघवर्णो  
 यथा । एयंमि पूश्यंमि, नडि तय जं न पूश्यं होई ॥  
 नवणेवि पूयणिज्जो, न गुणी संघाउ जं अन्नो ॥ १ ॥  
 देववर्णवादो यथा । देवाण अहो सीलं, विसयविस  
 मोहिया वि जिणनवणे ॥ अडरसाहिंपि समं, हासा  
 ई जेण नकरंतिति ॥ १ ॥

इस ठाणांगके पाठमें प्रथम पाठके पांचमें स्थान  
 में लिखा है कि देवतायोंके जो अवर्णवाद बोले सो  
 दुर्लज्जोवि पणेका कर्म उपाज्जन करे. तिसकी टिकाकी  
 जापा यहां कहते है. तथा ( विपक्कं ) अतिशय  
 करके पर्यतकों प्राप्त हूआ है तप और ब्रह्मचर्य नवां  
 तरमें जिनका अथवा ( विपक्कं केण ) उदय प्राप्त  
 हूवा है तप और ब्रह्मचर्यरूप हेतुसं देवताका आउ  
 प्कादि कर्म जिनके, तिन देवतायोंका अवर्णवाद

बोले. यथा कदापि देखनेमें न आवनेसें देवताही नहीं है, जेकर होवेंगेनी तो वेनी विट पुरुष अर्थात् अत्यंत कामी पुरुषकी तरें, कामासक्त होनेसें, किस का मके है? तथा वो देव अविरति है, तिनसें हमारा क्या प्रयोजन है तथा जिनकी आंखो मिचती नहीं है इस वास्ते चेष्टा करके रहित होनेसें मृततुल्य पुरुषके समान है, जैनशासनमें किसीनी काममें नहीं आते है, इत्यादि अनेक प्रकारसें पूर्वोक्त देवतायोंका अवर्णवाद बोले सो जीव ऐसा महामोहनीय कर्म बांधे कि जिसके प्रजावसें जैनधर्म तिस जीवकों प्राप्त होना दुर्लभ हो जावे क्योंकि यहां टीकाकार श्री अजयदेवसूरिजी उत्तर देते है. देवता है तिनके करे अ नुग्रह उपघातके देखनेसें, और कामासक्त जो देवता है, सो शाता वेदनीय और मोहनीय कर्मके उदयसें है, अरु अविरति कर्मके उदयसें वे विरति नहीं है, और जो आंख नहीं मीचते है सो देवत्वके स्वजावसें है, और जो अनुत्तर विमानवासी देव निश्चेष्ट चेष्टारहित है, वे देव कृतकृत्य हुए है अर्थात् उन कूं कुठनी बाकी करना नहीं है, इस वास्ते निश्चेष्ट है. और जो तीर्थकी प्रजावना नहीं करते है सो का

लदोष हैं अन्यत्र करतेनी हैं. इस वास्ते देवतायोका अर्घ्यवाद् बोलना युक्त नहीं है.

अब तिन देवतायोंके गुणग्राम करे तो सुलज्ज बोधि होवे जैसेके देवतायोंका कैसा शुद्ध आश्चर्य कारी शील है, विषयके वश विमोहित जिनका मन है, तोनी जिनजवनमे अपत्सरा देवाङ्गनायोंके साथ हास्यादिक नहीं करते हैं, इत्यादिक गुण बोले तो सुलज्जबोधिपणोका कर्म उपार्जन करे ॥

इस वास्ते जो कोइ, जैनसिद्धांतके रहस्यका अज्ञाण होकर जोले श्रावकोंके आगें, सम्यक्दृष्टी जो शासनदेवता अरु श्रुतदेवतादिक है, तिनकी निंदा करके तिनोका कायोत्सर्ग करणा और थुइ कहनी तिसका निषेध करता है और यह कृत कर ऐसे उनकों दूर रखता है, सो जीव कुर्जज्जबोधि होनेका कर्म उपार्जन करता है ॥

तथा श्रीआवश्यकचूर्णमें दशपूर्वधारी श्रीवज्र स्वामीजीने क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करा ऐसा लेख है, वो पाठ उपर लिख आए है तिसमें जेकर कोइ मुग्ध जीव ऐसा कहे के श्रीवज्रस्वामीजीने तो एकही वार कायोत्सर्ग कराथा, परंतु प्रतिदिन



कायोत्सर्ग नहीं कराथा. तिसका उत्तर लिखते हैंके श्रीवज्रस्वामीजीतो अतिशय युक्त थे तिस वास्ते उनकूं तो एकही वार कायोत्सर्ग करनेसैं क्षेत्रदेवता प्रगट होके आज्ञा दे गइथी, और अबतो नित्य कर ते है तोजी क्षेत्रदेवता प्रत्यक्ष नहीं होती है इस वा स्ते श्रीवज्रस्वामिजीकी वरावरी करके जो प्रतिदिन कायोत्सर्ग करनेका निषेध करें तिसकों सब मूर्खोंमे शिरोमणि जानना, और प्रतिदिन क्षेत्रदेवतादिकका जो कायोत्सर्ग करते हैं, सो बात जीवानुशासन ग्रं थकी साह्यसैं करते है तिसका पाठ हम उपर लिख आए है.

तथा दूसरा फेर आवश्यक सूत्रकाजी पाठ लिख कर दिखाते है, सो पाठ यह है ॥ यद्भुक्तं ॥ मममं गलमरिहंता, सिद्धा साहू सुहं च धम्मो अ ॥ सम्म द्विष्ठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥ मम इत्यात्मनिर्देशो मंगलं द्द्वमंगलं जावमंगलं च द्द्वमंगलं इहियरकयाशणो, जावमंगलं एगंतियमच्चंतियं सारी राशपच्चूहोवसामगत्तेण मांगलयति जावात् मंगं वा लातीत्यादिशब्दार्थत्वप्रवृत्तेश्च इदमेवार्हदादिविषयं पं चविधं ॥ तदेवाह ॥ अरिहंता सिद्धा साहूसुयं च

धम्मो य तब्ब ॥ अरिहं पि य कम्मं, अरिचूयं होइ  
 सब्बजीवाणं ॥ तं कम्ममरिहंता, अरिहंता तेण बुच्चं  
 ति ॥ तथा पिञ्ज वंधने सितं वरुं धमातं दग्धं कर्म यैस्ते  
 सिद्धाः तथा ज्ञानादिजिनिर्वाणं साधयंतीति साधवः ॥  
 श्रूयतइति श्रुतम् ॥ अंगोपांगादिर्विविधचेद आगमः ॥  
 दुर्गतिपतङ्गंतुधारणाधर्मः ॥ चशब्द. समुच्चयार्थः । इह  
 चान्यत्र चत्वार्येव मंगलानि पठ्यंते ॥ इह तु अनुष्ठा  
 नरूपधर्मस्य प्रक्रान्तत्वाधर्मस्यापि पंचमंगलतया विशेषे  
 ष्वप्यनमदोपायेति तथा सम्यगविपरीता दृष्टिस्तत्त्वा  
 र्थदर्शनं येषां ते सम्यग्दृष्टयो देवा यद्वांब्राह्मशांति  
 शासनदेवतादयस्ते । किमित्याह । ददतु यच्चंतु । कामि  
 त्याह समाहिं वा बोहिं च । तब्ब समाही इविहा  
 दव्वसमाही जावसमाही य । दव्वसमाही जेसिं  
 दव्वाणं परुप्परं अविरोहो जहा दहिगुडाणं  
 कीरसक्कराणं सिणिध्वंधवाणं सुहीणं कायस  
 न्नावोसिरणे वा एमाइ ॥ जावसमाही अरत्तइठस्स  
 असिणेहाइआउलस्स असंजोगविठ्ठगविट्ठुरस्स अह  
 रिसविसयाउरस्स सायरसरोवरसरिसस्स सुपसन्नम  
 णस्स समणस्स सावगस्स वा समाहाणं इयं हि  
 मूलं सब्बधम्माणं इमाणं व खंधोपसाहाणं व सा

हा फलस्सेव पुष्पं अंकुरस्सेव वीयं वीयस्सेव सु  
 चूमि एईएविणासु वहुंपि अणुछाणं कछाणुछाणप्पायं  
 अत्रा चैव समाही पब्बिषइ ॥ सायसमाहीमणोवी  
 सत्तया एतंच मणोसारीरिगमाणसेहिं खमखाससा  
 ससोसई साबिसायपियविप्पजंगसोगपमुहेहिं विडुरि  
 वई अउपरमत्तउ ऽसमाहिपत्तणाए एएसिंपि निरोहो  
 पत्तित्तं हवइत्ति ॥ नणु जेसम्मद्विठ्ठिणो एवं पत्तिया समा  
 हिवोहिदाणसमत्ता ? समत्ता जइ असमत्तातो किं  
 तत्त पत्तणाए निप्फलत्ताए अह समत्ता तो किं डुरज  
 वअजवाणं न दिंति ॥ अह मन्नसे जोगाणं चैव दाउं  
 समत्ता न अजोगाणं तो खाइंसजोगयच्चियपमाणं  
 किं तेहिं अयागलथणकप्पेहिं ॥ अयरित्तं जणइ ॥ सच्च  
 मेयं किंतु अम्हे जिणमइणो जिणमयं सिथवायप्प  
 हाणं ॥ सामग्री वै जनिकेति वचनात् तत्र घटनि  
 ष्पत्तौ मृदो योग्यतायामपि कुलालचक्रचीवरद्वरदं  
 दादयोपि तत्र कारणं एवमिहापि जीवस्य योग्यता  
 यामपि तथा तथा प्रत्यूहनिराकरणेन समाधिबोधि  
 दाने देवा अपि निमित्तं नवंतीत्यतः प्रार्थनापि फलवती  
 त्यजं प्रसंगेनेति गाथार्थः ॥

अब इस चूर्मिकी जापा लिखते हैं ॥ मम मंगल इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ मम ऐसा आत्मनिर्देश विषे है, अरु मंगल जो है सो दो प्रकारका है तिसमें एक इव्यमंगल और दूसरा नावमंगल तिनमें इव्यमंगल जो है सो दधि अकृतादिक है, और नावमंगल जो है सो एकांतिक अत्यंतिक है, अर्थात् एकांत सुखदायि और अंतरहित है. शारीरी मानसिक दुःखोंके उपशामक होने करके मेरेकों जो संसारसे दूर करे सो मंगल है, इत्यादि शब्दार्थ है. यह मंगल अरिहंतादि विषय जेदसे पांच प्रकारके हैं सो इ दिखाते है.

एक अरिहंत, दूसरा सिद्ध, तीसरा साधु, चउथा श्रुत, पांचमा धर्म, तिनमें सर्व जीवोंके शत्रुनूत ऐसे जो अष्टप्रकारके कर्म है तिनका जिनोने नाश करा है, सो अरिहंत जानना, अरु जिनोने कर्म बंधन दग्ध करे है वो सिद्ध जानना. तथा जो ज्ञानादि योगकरके निर्वाणकों साधते है वो साधु जानना. जो ऋणीयें सो श्रुत कहना, वो श्रुत अंगोपांगादि विविध प्रकारके आगम जानना, तथा जो दुर्गति में पडते हुए जीवोंकू धारण करे सो धर्म है, उदांच शब्द जो है सो समुच्चयार्थमें है, अन्यत्र चार ही

मंगल कहे है, और यहां अनुष्ठानरूप धर्मका प्रा रंज होनेसे तिस धर्मकों पांचमा अनुष्ठान कहनमें दोष नहीं है. तथा सम्यग् सो अविपरीत दृष्टी त त्वार्थश्रद्धानरूप वो है जिनोको सो सम्यग्दृष्टी देवता यद्, अंबा, ब्रह्मशांति, शासनदेवतादिक जा नना. वो क्या करे सो कहते है.

देवो क्या देवे ! समाधि और बोधि तहां समाधि दो प्रकारकी है, एक इव्यसमाधि, दूसरी जावस माधि तिसमे इव्यसमाधि यह हैकि जिन इव्योंका परस्पर अविरोधिपणा है जैसे दधी और गुड, तथा सक्कर ( मिसरी ) और दूध, स्नेहवंत जाइ और मित्र, मलोत्सर्ग करके मूतना इत्यादिका अ विरोध है, और जावसमाधि जो है सो रागद्वेषर हितकों, स्नेहादिसें अनाकूलकों, संयोग, वियोग क रके अविधुरकों, हर्षविषाद रहितकों, शरत्कालके सरोवरकी तरें निर्मलमनवाले ऐसे जो साधु वा श्रावक है तिनको होती है यह समाधिही सर्व धर्मोंका मूल है. जैसे वृद्धका मूल स्कंध है, गोटी साखायोंका मूल बडी साखायों है, फलोंका मूल फूल है, अंकूरका मूल बीज है, बीजका मूल सुनूमि

है, तैसैं सर्व धर्मोंका मूल समाधि ह. समाधिविना जो अनुष्ठान है सो सर्व अज्ञान कष्ट रूप है, इस वास्ते पूर्वोक्त देवतायोंसैं समाधि मागते है, वो समाधि तो मनके स्वस्थपणेसैं होती है, और मनका स्वस्थपणा तब होवे जब शारीरिक तथा मानसिक, दुःख न होवे, और चूख, खांसी, श्वास, रोग, शोष, ईर्ष्या, विपाद, प्रियविप्रयोग, शोक प्रमुख करके विधुर न होवे, तब स्वस्थपणा होवे. इस वास्ते परमार्थसैं समाधिकी प्रार्थनाद्वारें इन पूर्वोक्त उपड्वोंका निरोध प्रार्थन करा है.

ननु वितर्क. हे आचार्य, सम्यग्रूढष्टी देवतायोंकी इसतरें प्रार्थना करनेसैं वो देव, वो समाधि बोधि देनेकों समर्थ है? वा नहीं है? जेकर समर्थ नहीं होवे तबतो इनोकी प्रार्थना करनी निष्फल है, अरु जेकर समर्थ है तो दुर्जव्य अज्ञव्यकोंजी क्यों नहीं देते है जेकर तुम मानोंगेंकी योग्य जीवोंकोही देनेकूं समर्थ है, परंतु अयोग्य जीवोंकूं देने समर्थ नहीं है, तबतो योग्यताह। प्रमाण दुइ, तब वकरीके गलेके स्तन समान तिन देवतायोंकी काहेकों प्रार्थना करनी चाहियें ?

अब इनका उत्तर आचार्य देते हैं. हे नव्य तेरा कहना सत्य है. किंतु हमतो जैनमति है, और जैनमत स्याद्वादप्रधान है, सामग्री वैजनिकेति वचनात् ॥ तहां घटनिष्पत्तिमें मृत्तिकाके योग्यता होनेसें नी कुंजकार, चक्र, चीवर, मोरा, दंमादिनी तहां कारण है. जैसे यहांनी जीवके योग्यताके दूएनी ये पूर्वोक्त देवता तिस तिस तरेके विघ्न दूर करनेसें समाधि बोधि देनेमें निमित्तकारण होते हैं. इस वास्ते तिनकी प्रार्थना फलवती है. इति गाथार्थः ॥ ४७ ॥

इस आवश्यककी मूल गाथामें तथा इसकी चूर्णिमें प्रकट पणे समाधि और बोधिके वास्ते, सम्यग्दृष्टी देवतायोंकी प्रार्थना करनी कही है. तो फेर यह ग्रंथों सब पूर्वाचार्योंके रचे दूए हैं सो किसी प्रकारसें जूठा नहीं हो सकता है, परंतु हमने सुना है कि रत्नविजयजी अरु धनविजयजीने “सम्मदिठी देवा” इस पदकी जगें कोइ अन्यपदका प्रक्षेप करा है, जेकर यह कहेनेवालेका कथन सत्य होवे तबतो इन दोनोको उत्सूत्र प्ररूपण करणेका और संसारकी वृद्धि होनेका नय नहीं रहा है, यह बात सिद्ध होती है तो अब सज्जनोको यह विचार रखना चाहियेके सूत्रोंका प

दोनों फिरोयके तिस जगे दूसरे वाक्य लिखना यह काम करणेसे जो पाप लगे तिससे जास्ति पाप फेर दूसरे कौनसे काम करनेसे लगता होवेगा? यह काम करणमें कोइनी नवनीरु पुरुष आपनी सम्मतितो नहीही देवेगा, परंतु खरा अंतःकरणपूर्वक पश्चात्ताप करके इन दोनोंको इस कामसे दूर रहेने वास्ते अवश्य सत्य उपदेश करणेमें क्योंकर तत्पर न रहेगा! अपितु अवश्य रहेगाही. श्रीजिनेश्वर जगवानके वचन उच्चापन करना यह कुठ सहेज वात नही है, इस्से वो उच्चापक जीव अनंत संसारी बन जाता है, तो फेर जिसके हाथमें सब दर्शनोमें शिरोमणीनूत श्री जैनधर्मरूप चितामणि रत्न प्राप्त हुआ तिसको वो अपने डुराग्रहके अधीन होके दूर फेक देता है, अरु अपनी मनकल्पितरूप विष्ठाको उठाके हाथमें धारण करता है तिसको देखके कौन नव्यजीवको तिस पामर जीवके पर दयाका अंकुरा उत्पन्न नही होवेगा? अर्थात् निकट नव्यसिद्धियोंको तो आवश्यक करुणा आवेगीही. जब तिसके परकरुणा आवेगी तब वो प्रतिबोधनी अवश्य देवेगा, क्योंकी जेकर कोइ डुराग्रही जो बुज जावे तो उसका काम हो जावे, अरु



बोध करनेवालेकूंची बड़ा पूण्योपाङ्कन रूप जान हो जावे ऐसा जगवानका कथन है.

हमको बड़ा आश्चर्य होताहैकि पाटण खंवाता दिक शहेरोमें बडे बडे ज्ञानके जांभागारोंमें ताडप त्रोंके ऊपर पुराणी लिपियोंमें लिखे हुए ग्रंथ मौजूद है तिन सब ग्रंथोंमें सम्मदिष्टी देवा” यह पद लिखा हुआ है. तो जिस पुरुषको तिन पदकी जगें न वीन पद प्रक्षेप करतेनी कुठ नय नही आता है, परंतु और इसमें आनंद मान लेता है तो फेर तिसको अन्य पाप करनेसेंनी क्या नय होवेगा? जो अन्यायमें आनंद माने तिसको न्यायवचन कैसें प्रिय लगें?

तथा श्रीपाद्मीसूत्रका पाठ यहां लिखते हैं ॥ सुअ देवया जगवई, नाणावरणीयकम्मसंघायं ॥ तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुअसायरे जत्ती ॥१॥ व्याख्या ॥ सूत्रपरिसमाप्तौ श्रुतदेवतां विज्ञापयितुमाह सुअ० श्रुतदेवता संजवति च श्रुताधिष्ठातृदेवता जगवती पू ज्या ज्ञानावरणीयकर्मसंघातं ज्ञानघ्नकर्मनिवहं तेषां प्राणिनां कृपयतु कृत्यं नयतु । सततं येषां श्रुतमेवात गंजीरतया अतिशयरत्नप्रचुरतया च सागरस्तस्मिन् नक्तिर्बहुमाना विनयश्च समस्तीति गम्यते ॥

इसकी जापा लिखते हैं. सूत्रकी समाप्तिमें श्रुत देवीको विज्ञापना करते हैं. सुअ० ॥ श्रुतदेवता श्रुतकी अधिष्ठात्री, देवी जगवती पूजने योग्य तिस्कूं विनंति करते हैंके ज्ञानावरणीय कर्मके समूहको है श्रुतदेवी तुं निरंतर द्य कर दे, जिनपुरुषोंके जगवंतनापित श्रुतसागरविषे चक्ति बहुमान है तिन पुरुषोंके ज्ञानावरणीयकर्मका समूहको द्य कर दे. इस पाठमें श्रुतदेवीकी विनंति करे तो ज्ञानावरणीयकर्मद्वय होवे, ऐसा कहा है. इसवास्ते जो कोइ श्रुतदेवीका कायोत्सर्ग और तिस्की शुद्धिका निषेध करता है, सो जिनमतके ज्ञानरूप नेत्रोंसे रहित है, ऐसा जानना. - परंतु ऐसा चोले लोगोको न कहनाकि यह हमारी निंदा करी है? परंतु अपने हृदयमें कुछ विचार करके सुखसे कथन करना तो सब तरहसे सुखदाइ होवेगा, जिसे आपको बहुत लान होवेगा, उलटा पासा आपका पडा गया है, तिसको सुलटा करणासो आपकेही हाथ है सो अपबूज जावेगें अरु शुद्धमार्गकी राहपर चलेगें यह हमारा मनोरथ है सो आपको उत्तम सुखके दाता है.

तथा श्रीआवश्यक चूर्णार्थादिकोंका पाठ॥चाउम्मासि  
 यसंवह्ररिएसु सवेवि मूलगुणउत्तरगुणाणं आलोयणं  
 दाऊण पमिक्कमंति खित्तदेवयाए य उस्सग्गं करेति केइ  
 पुंण चाउम्मासिगे सिद्धादेवताए वि काउस्सग्गं क  
 रेति । आवश्यकचूर्णौ० चाउम्मासिए एगे उवसग्ग  
 देवताए काउस्सग्गो कीरति संवह्ररिए खित्तदेवयाएवि  
 कीरति अप्पहिउ ॥ आवश्यकचूर्णौ । तथा श्रुतदेवाया  
 श्रागमे महती प्रतिपत्तिर्दृश्यते तथाहि सुयदेवयाए  
 आसायणाए श्रुतदेवताजीए सुयमहिष्ठियं तीए आ  
 सायणा नहि साऽकिंचित्करी वा एवमादि आव  
 श्यकचूर्णौ जा दिष्ठिदाणमित्ते ए देइ पणइणनरसुर  
 समिद्धिं ॥ सिवपुररब्धं आणारयाण देवीइ नमो ॥  
 आराधनापताकायां, यत्प्रजावादवाप्यंते, पदार्थाः क  
 ल्पनां विना ॥ सा देवी संविदे न स्ता, दस्तकल्पल  
 तोपमा ॥ उत्तराध्ययनवृहद्वृत्तौ० प्रणिपत्य जिनव  
 रेइं वीरं श्रुतदेवतां गुरून् साधून् ॥ आवश्यकवृत्तौ,  
 यस्याः प्रसादमतुलं संप्राप्य नवंति नव्यजिननि  
 वहाः ॥ अनुयोगवेदिनस्तां प्रयतः श्रुतदेवतां वंदे ॥  
 अनुयोगद्वारवृत्तौ० ॥ इस उपरले पाठ आवश्यक  
 चूर्णार्थे नवनदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग

करणा कहा है. चातुर्मासीमे एकैक जवनदेवताका कायोत्सर्ग करते है, और संवत्सरीमें जवनदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करते है यह कथन आवश्यकचूर्णिमें है.

तथा आगममें आवश्यकचूर्णिमे श्रुतदेवताकी विनय नक्ति करनी कही है. सो पाठ ऊपर लिखा है तथा जो श्रुतदेवी दृष्टि देने मात्रसें जगवंतकी आज्ञामें रत पुरुषोंके नर सुरकी रुद्धि देती है. यह कथन आराधनापताका ग्रंथमें है.

तथा श्रुतदेवी हमको ज्ञानकी दात्री होवे यह कथन श्रीउत्तराध्ययनकी वृहदृत्तिमें है.

तथा जिनवरेंद्र श्रीमहावीरकों, तथा श्रुतदेवताकों तथा गुरुओंकों नमस्कार करके आवश्यक सूत्रकी वृत्ति रचता हूं ॥ इति हारिज्जीयावश्यकवृत्तौ ॥

तथा जिन श्रुतदेवीका अतुल्य प्रसाद अनुग्रह करके जन्म जीव जो है सो अनुयोगके जानकार होते है तिस श्रुतदेवीकों में नमस्कार करता हूं, यह कथन श्रीअनुयोगद्वारकी वृत्तिमें है. तथा श्रीनिशीथचूर्णिके शोलमें उद्देशमें जाप्यचूर्णिमे साधुओंकों वन देवताका कायोत्सर्ग करना कहा है, सो पाठ यहां

लिखते हैं॥ताहे दिसा नागममुपंता बालबुद्ध गह्वस्स  
रकण्ठाए वणदेवताए काउस्सग्गं करैति ॥ इत्यादि.

तथा श्रीहरिचन्द्रसूरिजीने श्रुतदेवताकी चौथी शु  
५ रची है. “ आमूलालोलधूली ” इत्यादि, यह शु५  
जैनमतमें प्रसिद्ध है.

तथा श्रीआमराजा ग्वालियरका तिस्का प्रतिबो  
धक श्रीवृष्णनटसूरि महाप्रजावक हुए हैं तिनोंका  
जन्म विक्रम संवत् ७०३ में हुआ है तिनोंने एकैक  
तीर्थकरके नामसे तथा संबंधसे प्रथम शु५, दूसरी  
सर्व तीर्थकरोकी शु५, तीसरी श्रुतज्ञानकी शु५, अरु  
चौथी श्रुतदेवी, विद्यादेवी आदिककी शु५ इसतरें  
चौबीस चोक ठानवें शु५यां रचीयां है, तिनमें सर्वत्र  
चौथी शु५योंमें अनुक्रमसें इन देवी देवतायोंकी स्तव  
ना करी है. तहां श्रीरूपनदेवके संबंधकी चौथी शु  
५में वाग्देवताकी शु५ है. श्रीअजितनाथके साथ  
अपराजिता देवीकी शु५ है, ऐसेही रोहिणी, प्रज्ञप्ति,  
वज्रशृंगखला, वज्रांकुशी, अप्रतिचक्रा, काली, मान  
वी, पुरुषदत्ता, महाकाली, गौरी, गांधारी, मानसी,  
महामानसी, काली, महाकाली, वैरोध्या, वाग्देवता,  
श्रुतदेवी, गौरी, अंबा, यहराट्, अंबिका, इसतरें अनु

क्रमसें चौबीस शुश्यामें इन देवतायोंकी स्तवना करी है. सो ग्रंथ गौरवताके जयसें सर्व शुश्यां तो यहां नही लिखते हे, जेकर किसीकों देखनी होवे तो ग्रंथ मेरे पास हे सो आकर देख लेनी. तथापि तिनमेसें बाबीशमें श्रीनेमिनाथके संबंधकी चार शुश्यां यहां लिख देते हैं. तथाच तत्पाठः ॥ चिरपरिचितलक्ष्मी प्रोद्भयसिद्धौरतारा, दमरसदृशमर्त्या वर्जितां देहि नेमे ॥ नवजलनिधिमङ्गलान्तुनिर्व्याजबंधो दमरसदृशमर्त्या वर्जितां देहि नेमे ॥ ७२ ॥ विदधदिह यदाज्ञां निर्वृतो शं मणीनां सुखनिरतनुतानोनुत्तमास्ते महान्तः ॥ ददतु विपुलजडां षाग् जिनेंशः श्रियं स्वः सुखनिरतनुतानोनुत्तमास्ते महान्तः ॥ ७६ ॥ कृतसमुत्तिवर्द्धिध्वस्तरुग्मृत्युदोषं परममृतसमानं मानसं पातकांतं ॥ प्रतिदृढरुचि कृत्वा शासनं जैनचंडं परममृतसमानं मानसं पातकांतं ॥ ७७ ॥ जिनवचनकृतास्था संश्रिता कघ्नमाघ्नं, समुदित सुमनस्क दिव्यसौ दामनीरुक् ॥ दिशतु सततमंवा चूतिपुष्पात्मकं नः समुदितसुमनस्कदिव्यसौदामनीरुक् ॥ ७८ ॥

तथा श्रीजिनेश्वरसूरिका शिष्य और नवांगी वृत्तिकारक श्रीअजयदेव सूरिजीका गुरु जाइ, संसाराव

स्थामें श्रीधनपाल पंमितका सगा नाइ, संवत् १७  
 १९ के लगनगमें श्रीशोचनाचार्य महामुनि हुए हैं,  
 तिनोने श्रीबप्पनट्ट सूरिजीका तरें चौवीस चोक ठां  
 नवे शुइयां रची है तिनमेंनी चौवीशे चौथी शुइयोमें  
 अनुक्रमसें श्रुतदेवता, मानसी, वज्रशृंखला, रोहि  
 णी, काली, गंधारी, महामानसी, वज्रांकुशी, ज्वल  
 नायुद्धा, मानवी, महाकाली, श्रीशांतिदेवी, रोहिणी,  
 अच्युता, प्रज्ञप्ति, ब्रह्मशांति यद्, पुरुषदत्ता, चक्रधरा,  
 कपर्दियद्, गौरी, काली, अंबा, वैरोद्ध्या, अंबिका, ९  
 नकी स्तवना करी है.

अब नव्य जीवोंकूं विचारणा चाहियें की जब श्री  
 जिनेश्वरसूरिके उपदेशसें तथा पूर्वाचार्योंकी परंपराय  
 सें, पूर्वाचार्यसम्मत चौथी शुइ है तो तिस्का निषेध  
 करणा यह जिनाज्ञाधारक प्रामाणिक पुरुषका लक्ष  
 ण नही है. क्योंकि जो पुरुष पूर्वाचार्योंकी आचर  
 णाका उल्लेख करे सो जमालिकी तरें नाशकों प्राप्त  
 होवे. अइसा कथन श्रीसूयगडांग सूत्रकी निर्युक्तिमें श्री  
 नड्वाहु स्वामीनें करा है. सो पाठ यहां लिखतें है ॥  
 आयरिए परंपराए, आगयं जो ज्ञेय बुद्धिए ॥ कोइ

वोढेय वाइ, जमालिनासं स नासेइ ॥ १ ॥ अर्थः—  
आचार्योंकी परंपरायसैं जो आचरणा चली आती  
होवे तिस्को उढेद करने अर्थात् न माननेकी जो बु  
द्धि करे, सो जमालिकी तरें नाशकों प्राप्त होवे.

तथा श्रीगण्ठांगकी टीकामें श्रुतज्ञानवृद्धिके सात  
अंग कहे है. सूत्र, निर्युक्ति, ज्ञाप्य, चूर्षि, वृत्ति, परं  
परा, अनुभव, इनकों जो कोइ षेदे सों दूरजव्य अर्था  
त् अनंतसंसारि है, अैसा कथन पूर्वपुरुषोंने करा है.

इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धनविजयजी जेकर  
जैनशैली पाकर आपना आत्मोद्धार करणेकी जि  
ज्ञासा रखनेवाले होवेगे तो मेरेकों हितेहु जानकर  
अोर क्वचित् कटुक शब्दके लेख देखके उनकेपर हित  
बुद्धि लाके किंवा जेकर बहुते मानके अधीन रहा होवे  
तो मेरेकों माफी बद्दीस करके मित्र जावसैं इस पूर्वी  
क्त सर्व लेखकों वांच कर शिष्ट पुरुषोंकी चाल चलके  
धर्मरूपवृद्धकों उन्मूलन करनेवाला अैसा तीन घुइयों  
का कढाग्रहकों ठोडके, किसी संयमि गुरुके पासचारित्र  
उपसंपत् लेके गुह प्ररूपक हो कर इस नरतरखंमकी नू  
मिकों पावन करेंगे तो इन दोनोका कव्याण शीघ्रही हो  
जावेगा यहा हमारा आशीर्वाद है, बहुजिखनेन किम् ॥



अथ

निकट उपकारी गणिवर्ग्य श्रीमन्मणिविजयजी  
महाराजकी किंचित् गुरुप्रशस्ति लिखते है.

॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

तपागळे जगद्व्ये, जज्ञिरे बुद्धिशालिनः ॥

श्रीमन्मणिविजयाख्या, गुरवः संयमे रताः ॥ १ ॥

यस्य धर्मोपदेशेन, निर्मलेन कति जनाः ॥

सम्यक्त्वं लेनिरे साधु, धर्मं च लेनिरे कति ॥२॥

तेषां पट्टांवरे चंडा, नूरिशिष्यप्रशिष्यकाः ॥

श्रीमद्बुद्धिविजयाख्या, वनूबुद्धिसागराः ॥ ३ ॥

निःसंगा निर्ममाः क्हांता, ये च पांचालनीवृति ॥

ढुंढकार्यं मतं हित्वा,जाताः संवेगनाजनम् ॥४॥

तन्निष्येण मयानंदविजयेन सविस्तरः ॥

ग्रंथोऽयं गुफितः सम्यक्, चतुर्थस्तुतिनिर्णयः ॥५॥

बुद्धिमांद्यवशात् किंचित्, यदशुद्धमलेखि तत् ॥

मात्सर्य्यं संपरित्यज्य, शोधयध्वं मनीषिणः ॥६॥

इति न्यायान्निधि—श्रीमद्—आत्मारामजी ( आ  
नंदविजयजी)महाराजविरचितः चतुर्थस्तुतिनिर्णयः॥

॥ समाप्तमिदम् ॥





